[2021] 1 उम. नि. प. 97

बिक्रमजीत सिंह

बनाम

पंजाब राज्य

[2020 की दांडिक अपील सं. 667]

12 अक्तूबर, 2020

न्यायमूर्ति रोहिंटन फली नरीमन, न्यायमूर्ति नवीन सिन्हा और न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 167 [सपठित विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 43घ और राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008 की धारा 13(1) और 22] – अभियुक्त के विरुद्ध आरोपों के लिए 90 दिन की अनुबंधित अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा न होना – व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन किया जाना – न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पहले ही अन्वेषण की अवधि में विस्तार किए जाने के आधार पर आवेदन खारिज किया जाना – अपराध केवल विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय होने के कारण विशेष न्यायालय द्वारा अभियुक्त के पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर किया जाना – इसी बीच आरोप पत्र/चालान फाइल किया जाना – अभियुक्त द्वारा पुन: व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन फाइल किया जाना – आरोप पत्र फाइल करने के कारण व्यतिक्रम जमानत का अधिकार निर्वापित हो जाने के आधार पर न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा और पुनरीक्षण में विशेष न्यायालय द्वारा आवेदन खारिज किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किया जाना – चूंकि विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन आने वाले अपराधों का विचारण राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालयों द्वारा किया जाना है, इसलिए अन्वेषण की अनुबंधित अवधि में विस्तार करने की अधिकारिता न्यायिक मजिस्ट्रेट को न होकर केवल विशेष न्यायालय को है और यदि व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन का गलत रूप से

विनिश्चय किया गया हो, तो अभियुक्त को प्रोद्भूत व्यतिक्रम जमानत का अजेय अधिकार निर्वापित नहीं हो जाता है और वह जमानत का हकदार होगा ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 167 [सपठित विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 43घ और राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008 की धारा 13(1) और 22] – व्यतिक्रम जमानत – जहां आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व अन्वेषण पूरा करने की 90 दिन की अवधि समाप्त हो गई हो और अभियुक्त ने व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन किया हो और जमानत देने के लिए इच्छुक है, तो न्यायालय द्वारा ऐसे आवेदन का निपटारा करने से पूर्व यदि आरोप पत्र/चालान फाइल कर दिया जाता है, तो आवेदन का निपटारा करने में हुए विलंब के आधार पर आवेदन का गलत रूप से विनिश्चय करने के कारण अभियुक्त का व्यतिक्रम जमानत का अधिकार निर्वापित नहीं हो जाता है और वह जमानत का हकदार होगा ।

इस मामले के तथ्यों के अनुसार, अपीलार्थी-अभियुक्त और एक अन्य सह-अभियुक्त द्वारा एक सत्संग भवन में सत्संग कर रहे व्यक्तियों पर हैंड ग्रेनेड फेंका गया था जिसमें कई व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी और कई सारे व्यक्ति गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गए थे । दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसरण में पंजाब राज्य की पुलिस ने तारीख 22 नवंबर, 2018 को अपीलार्थी, बिक्रमजीत सिंह को गिरफ्तार किया और उसी तारीख को विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट द्वारा उसे अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया । अभिरक्षा में 90 दिन के पश्चात्, जो तारीख 21 फरवरी, 2019 को समाप्त हुई थी, उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट, अजनाला को व्यतिक्रम जमानत के लिए एक आवेदन किया गया । इस आवेदन को तारीख 25 फरवरी, 2019 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि विद्वान् उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट ने तारीख 23 फरवरी, 2019 के आदेश द्वारा विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 द्वारा यथा संशोधित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 के अधीन पहले ही 90 दिन के समय को बढ़ाकर 180 दिन कर दिया गया था । तथापि, अपीलार्थी और उसके सह-अभियुक्त द्वारा

एक पुनरीक्षण याचिका के द्वारा इस आदेश को चुनौती दी गई और वह पुनरीक्षण तारीख 25 मार्च, 2019 के आदेश द्वारा सफल रहा था, जिसके द्वारा विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने राष्ट्रीय अन्वेषण अधिकरण अधिनियम, 2008 के अधीन गठित विशेष न्यायालय होने के नाते केवल उसे ही समय का विस्तार करने की अधिकारिता होने के आधार पर पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर किया था । एक दिन बाद तारीख 26 मार्च, 2019 को पुलिस अन्वेषण के पश्चात् विद्वान् विशेष न्यायाधीश के समक्ष एक आरोप पत्र फाइल किया गया, जिसमें तारीख 18 नवंबर, 2018 को दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अन्वेषण के अनुसरण में जो अपराध कारित किए गए थे, उनमें भारतीय दंड संहिता के साथ पठित आयुध अधिनियम, 1959 की विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 और विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 के अधीन किए गए अपराध का अवलंब लिया गया था । इसी बीच, पुनरीक्षण याचिका, जो तारीख 25 फरवरी, 2019 के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई थी, उसे विशेष न्यायाधीश द्वारा तारीख 11 अप्रैल, 2019 को खारिज कर दिया गया, जिन्होंने तारीख 25 मार्च, 2019 के आदेश की अवेक्षा करने के पश्चात् न्यायिक मजिस्ट्रेट के तारीख 13 फरवरी, 2019 के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई पुनरीक्षण याचिका मंजूर की थी, तो भी व्यतिक्रम जमानत मंजूर करने के लिए इनकार कर दिया गया । उसी दिन अर्थात् 11 अप्रैल, 2019 को व्यतिक्रम जमानत के लिए तारीख 8 अप्रैल, 2019 के आवेदन को भी खारिज कर दिया गया । अपील में उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 और विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम तथा राष्ट्रीय अन्वेषण अधिकरण अधिनियम के कुछ उपबंधों को उपवर्णित करने के पश्चात् इसे खारिज कर दिया गया । अभियुक्त द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008 की स्कीम यह है कि अधिनियम की अनुसूची में अंतर्विष्ट अधिनियमितियों

के अधीन अब अपराधों का विचारण अनन्य रूप से इस अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालयों द्वारा किया जाना है । इन्हें अधिनियम की धारा 11 के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा या धारा 22 के अधीन राज्य सरकार द्वारा गठित किया जा सकेगा । प्रस्तुत मामले के तथ्यों के आधार पर, इस न्यायालय का सरोकार धारा 22 से है क्योंकि पंजाब राज्य के भीतर विशेष न्यायालय तारीख 10 जून, 2014 की अधिसूचना द्वारा गठित किए गए हैं । यह देखने में आता है कि पूर्वोक्त अधिसूचना राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 22(1) के अधीन जारी की गई थी । उल्लेखनीय महत्वपूर्ण बात यह है कि धारा 22(2)(ii) के अधीन धारा 13(1) में किए गए केंद्रीय अभिकरण के प्रति-निर्देश का अर्थ राज्य सरकार के अन्वेषण अभिकरण - अर्थात् इस मामले में राज्य पुलिस के प्रतिनिर्देश के रूप में लगाया जाएगा । इसके पश्चात्, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि धारा 22 की उपधारा (3) द्वारा किसी विशेष न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता का, राज्य सरकार द्वारा कोई विशेष न्यायालय अभिहित किए जाने तक, संहिता में किसी बात के होते हुए भी, केवल उस खंड के सेशन न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाएगा जिसमें ऐसा अपराध किया गया है ; और धारा 22 की उपधारा (4) द्वारा उस तारीख से ही, जब राज्य सरकार द्वारा विशेष न्यायालय अभिहित किया जाता है, राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन राज्य सरकार द्वारा अन्वेषण किए गए किसी अपराध का विचारण, उस तारीख को जिसको यह अभिहित किया गया है, उस न्यायालय में अंतरित हो जाएगा । राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 13(1), जो पुन: एक सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है, जिसमें यह कहा गया है कि संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इसे धारा 22(2)(ii) के साथ पढ़ने पर, राज्य सरकार के अन्वेषण अधिकरण द्वारा अन्वेषण किए गए प्रत्येक अनुसूचित अपराध का विचारण अनन्य रूप से केवल उसी विशेष न्यायालय द्वारा किया जाएगा जिसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर वह अपराध किया गया था । जब इन उपबंधों को विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 2(1)(घ) और धारा 43घ(2) में दिए गए परंतुकों के साथ पढ़ा जाए, तो दोनों अधिनियमों की स्कीम, जिन्हें एक-साथ पढ़ा जाना

चाहिए, पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है । धारा 43घ(2)(ख) में दिए गए प्रथम परंतुक के अधीन, संहिता की धारा 167(2) के प्रथम परंतुक द्वारा उपदर्शित 90 दिन की अवधि को अधिकतम 180 दिन की अवधि तक विस्तारित किया जा सकता है यदि "न्यायालय" लोक अभियोजक की अन्वेषण की प्रगति और अभियुक्त को 90 दिनों की अवधि से परे निरुद्ध रखने के लिए विनिर्दिष्ट कारणों को उपदर्शित करने वाली रिपोर्ट से संतुष्ट है । "न्यायालय" को जब विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 2(1)(घ) में अंतर्विष्ट विस्तारित परिभाषा के साथ पढ़ा जाए, तो यह अब राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण की धारा 22 के अधीन गठित विशेष न्यायालय का उल्लेख करती है । अत: इन उपबंधों के अनुशीलन से जो बात स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन सभी अपराधों के लिए केवल विशेष न्यायालय को ऐसे अपराधों का विचारण करने की अनन्य अधिकारिता है । यह बात राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 16 को पढ़ने पर भी और अधिक स्पष्ट हो जाती है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि विशेष न्यायालय ऐसे तथ्यों का परिवाद प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर अभियुक्त को इसके विचारण के लिए सुपुर्द किए बिना किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा । राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 15(2) को पढ़ने से समान रूप से जो बात स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि भले ही अपराध तीन वर्ष से अनधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय हों, केवल विशेष न्यायालय, यद्यपि एक संक्षिप्त रीति में यदि वह ऐसा करना उचित समझता है, ऐसे अपराध का विचारण करेगा । ऊपर उल्लिखित उपबंधों का सिंहावलोकन करने पर, धारा 13 को विशिष्ट रूप से राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण की धारा 22(2)(ii) के साथ पढ़ने पर, पंजाब राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल की ओर से उक्त अधिनियम की धारा 10 के आधार पर दी गई दलील निराधार है चूंकि विशेष न्यायालय को राज्य के अन्वेषण अभिकरण द्वारा अन्वेषण किए गए प्रत्येक अनुसूचित अपराध की अनन्य अधिकारिता है । राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के अधिनियमित होने से पूर्व, विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम

के अधीन अपराध दो प्रकार के थे – वे जिनके लिए अधिकतम कारावास सात वर्ष से ऊपर था और जो अधिकतम सात वर्ष और इससे कम के कारावास के साथ थे । संहिता, जैसी कि वह अन्य विधियों के अधीन अपराधों पर लागू होती है, के अधीन ऐसे अपराध जिनमें अधिकतम दंडादेश सात वर्ष या इससे कम है, मजिस्ट्रेट के न्यायालयों द्वारा विचारणीय हैं, जबकि ऐसे अपराध जिनमें अधिकतम दंडादेश सात वर्ष से अधिक है, सेशन न्यायालयों द्वारा विचारणीय हैं । इस स्कीम को 2008 के अधिनियम द्वारा पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया है क्योंकि सभी अनुसूचित अपराधों अर्थात् विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन आने वाले सभी अपराधों का विचारण, अन्वेषण चाहे राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण द्वारा किया गया है या राज्य सरकार के अन्वेषण अभिकरणों द्वारा किया गया है, अनन्य रूप से इस अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालयों द्वारा किया जाएगा । या तो केंद्रीय सरकार द्वारा या राज्य सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना के द्वारा किसी अभिहित न्यायालय के अभाव में, केवल सेशन न्यायालय का आश्रय लिया जाना है । इस प्रकार, पूर्वोक्त स्कीम के अधीन जो बात स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि जहां तक विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन सभी अपराधों का संबंध है, धारा 43घ(2)(ख) में दिए गए प्रथम परंतुक के अधीन समय का विस्तार करने के लिए मजिस्ट्रेट की अधिकारिता विद्यमान नहीं है और किसी विशेष न्यायालय को विनिर्दिष्ट करते हुए किसी अधिसूचना के अभाव में, "न्यायालय" या तो सेशन न्यायालय है या स्वयं विशेष न्यायालय है । आक्षेपित निर्णय, जिसमें प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया है, गलत है क्योंकि इसमें राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण की धारा 13 के साथ पठित धारा 22(2) पर विचार नहीं किया गया है । साथ ही, आक्षेपित निर्णय में राष्ट्रीय अन्वेषण अधिनियम की धारा 16(1) पर भी विचार नहीं किया गया है जिसमें यह उपबंधित है कि विशेष न्यायालय, अन्य बातों के साथ-साथ, ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर अभियुक्त को उसके विचारण के लिए सुपुर्द किए बिना किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा । (पैरा 17, 18, 19, 20 और 21)

प्रस्तुत मामले के तथ्यों के आधार पर, उच्च न्यायालय का यह कहना पूर्ण रूप से गलत है कि जब एक बार अभियोजन पक्ष द्वारा तारीख 25 मार्च, 2019 को चालान प्रस्तुत कर दिया गया था और चूंकि अपीलार्थी द्वारा आवेदन द्वारा तारीख 26 मार्च, 2019 को फाइल किया गया था, इसलिए अपीलार्थी व्यतिक्रम जमानत के लिए हकदार नहीं है । सर्वप्रथम बात तो यह है कि उच्च न्यायालय ने तारीखों को पूरी तरह से गलत लिया है । व्यतिक्रम जमानत के लिए जो आवेदन किया गया था, वह तारीख 25 फरवरी, 2019 को या इसके पूर्व किया गया था न कि तारीख 26 मार्च, 2019 को । आरोप पत्र तारीख 26 मार्च, 2019 को फाइल किया गया था न कि तारीख 25 मार्च, 2019 को । इस तथ्य से कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि तारीख 25 फरवरी, 2019 को आवेदन को गलत रूप से खारिज किया गया था इसे पुनरीक्षण में ठीक किया जाना चाहिए था । आवेदन को खारिज करने का एकमात्र आधार यह था कि उप-मडंल न्यायिक मजिस्ट्रेट, अजनाला द्वारा 90 दिनों के समय को तारीख 13 फरवरी, 2019 के अपने आदेश द्वारा पहले ही विस्तारित कर दिया गया था । इस आदेश को विशेष न्यायालय द्वारा तारीख 25 मार्च, 2019 के अपने निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए ठीक ही अपास्त किया गया था कि राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के साथ पठित विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन केवल विशेष न्यायालय को धारा 43घ(2)(ख) में प्रथम परंतुक के अधीन 180 दिनों तक समय का विस्तार करने की अधिकारिता है । इस तथ्य का कि अपीलार्थी ने तारीख 8 अप्रैल, 2019 को फिर से व्यतिक्रम जमानत के लिए एक अन्य आवेदन फाइल किया था, यह अर्थ नहीं होगा कि इस आवेदन से उस पूर्ववर्ती आवेदन का प्रभाव समाप्त हो जाएगा जिसका गलत रूप से विनिश्चय किया गया था । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम एक ऐसे कानून के अधीन अभियुक्त की दैहिक स्वाधीनता पर विचार कर रहे हैं, जिसमें कठोर दंड अधिरोपित किए गए हैं । व्यतिक्रम जमानत का अधिकार, जैसा कि इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है, संहिता की धारा 167(2) के प्रथम परंतुक के अधीन मात्र कानूनी अधिकार नहीं है, अपितु भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का भाग है, इसलिए जो कि अभियुक्त व्यक्ति को तब जमानत पर छोड़े

जाने के लिए प्रदान किया गया एक मूल अधिकार है जब एक बार धारा 167(2) के प्रथम परंतुक की शर्तें पूर्ण हो जाती हैं । ऐसी स्थिति में, हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हैं । अपीलार्थी अब संहिता की धारा 167(2), विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 43घ द्वारा यथा संशोधित, के अधीन 'व्यतिक्रम जमानत' पर छोड़े जाने का हकदार होगा । तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह बात याची को तर्कपूर्ण आधारों पर गिरफ्तार या पुन: गिरफ्तार करने से प्रतिषिद्ध या निवारित नहीं करती है और याची गिरफ्तार या पुन:-गिरफ्तार होने पर नियमित जमानत के लिए आवेदन फाइल करने का हकदार है और उस आवेदन पर उसके गुणागुण के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । यह न्यायालय यह भी स्पष्ट करता है कि इस निर्णय का किसी अन्य मामले में याची की गिरफ्तारी पर कोई असर नहीं पड़ेगा । (पैरा 29)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	(2017) 15 एस. सी. सी. 67 : **राकेश कुमार पॉल** बनाम **असम राज्य** ;	27
[2014]	(2014) 9 एस. सी. सी. 457 : **भारत संघ** बनाम **निराला यादव** ;	25
[2012]	(2012) 12 एस. सी. सी. 1 : **सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** ;	26
[2011]	(2011) 10 एस. सी. सी. 445 : **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	25
[2001]	(2001) 5 एस. सी. सी. 453 : **उदय मोहनलाल आचार्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	24, 25
[1995]	[1995] 2 उम. नि. प. 104 = (1994) 4 एस. सी. सी. 602 : **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	22

[1995] [1995] 2 उम. नि. प. 285 =
(1994) 5 एस. सी. सी. 410 :
संजय दत्त बनाम **राज्य, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से** । 23, 24

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2020 की दांडिक अपील सं. 667.

2019 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 19259 (ओएंडएम) में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 30 अक्तूबर, 2019 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

हाजिर होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री कोलिन गोंसलवेस, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) ओलिविया बंग, आर. गोपाल, सत्या मित्रा, (सुश्री) जसप्रीत गोगिया और करणवीर गोगिया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रोहिंटन फली नरीमन ने दिया ।

न्या. नरीमन – इजाजत दी गई ।

2. तारीख 18 नवंबर, 2018 की एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में, जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307, 452, 427, 341, 34 के साथ पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 की धारा 3, 4, 5, 6 और विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 13 अंतर्वलित थी, निम्नलिखित कथन किया गया था :–

> "मैं उपरोक्त पते का निवासी हूं और नेहरू काम्पलैक्स में फर्नीचर का कारबार कर रहा हूं । मैं प्रत्येक रविवार को निरंकारी भवन, राजासांसी में अपनी धार्मिक सेवाएं करता हूं । आज अर्थात् 28 नवंबर, 2018 को सत्संग भवन में सत्संग हो रहा था, जहां लगभग 200 सत्संगी मौजूद थे । लगभग 11.30 बजे पूर्वाह्न में, मैं अपने साथी गगनदीप सिंह पुत्र बलविन्दर सिंह, निवासी गुमटला के साथ जब मुख्य दरवाजे पर सुरक्षा गार्ड की ड्यूटी कर रहा था, तब दो नवयुवक काले रंग की बिना संख्या की एक पल्सर मोटरसाइकिल पर वहां आए । उनमें से एक ने जीन और जैकेट

पहनी हुई थी और उसके सिर पर पगड़ी थी तथा उसने अपना चेहरा चारखाने के एक कपड़े से ढका हुआ था । वह अंदर आया और दूसरा नवयुवक, जो कुर्ता, पायजामा और जैकेट पहने हुए था तथा एक रुमाल से अपना चेहरा ढका हुआ था, ने अपने पायजामे की तह से एक पिस्तौल निकाली और हमें बाथरूम के निकट एक-साथ खड़ा कर दिया । जो नवयुवक सत्संग हाल के अंदर गया था, उसने अपने दाएं हाथ से स्टेज पर एक हैंड ग्रेनेड फेंका । एक विस्फोट हुआ और उपर्युक्त नवयुवक ने एक पिस्तौल निकाली और दरवाजे की ओर दौड़ा । दोनों नवयुवक अपनी पल्सर मोटरसाइकिल पर गांव अडलीवाल की ओर भाग गए । ग्रेनेड विस्फोट के कारण सत्संग के लगभग 22 व्यक्तियों को गंभीर क्षतियां पहुंचीं । अन्य व्यक्तियों ने वाहन की व्यवस्था की और क्षतिग्रस्त व्यक्तियों को आईवीवाई अस्पताल, अमृतसर और गुरु नानक देव अस्पताल, अमृतसर लेकर आए, जहां सुखदेव कुमार पुत्र कंसराज, निवासी कोहाली, अब मिरनकोट का निवासी, आयु लगभग 45 वर्ष, कुलदीप सिंह पुत्र जोगिन्दर सिंह, निवासी बग्गा और संदीप सिंह पुत्र अमरजीत सिंह, निवासी वार्ड सं. 7, राजासांसी की आईवीवाई अस्पताल, अमृतसर में मृत्यु हो गई । उपरोक्त नवयुवकों ने सत्संग पर एक हैंड ग्रेनेड फेंककर 22 व्यक्तियों को गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त किया था, जिनमें से तीन व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी । उपर्युक्त अभियुक्तों के विरुद्ध भयपरतकारी कार्रवाई की जाए । मैंने अपने कथन को सुना है । यह सही है ।"

3. इस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसरण में, पंजाब राज्य की पुलिस ने तारीख 22 नवंबर, 2018 को अपीलार्थी, बिक्रमजीत सिंह, आयु 26 वर्ष को गिरफ्तार किया और उसी तारीख को विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट द्वारा उसे अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया । अभिरक्षा में 90 दिन के पश्चात्, जो तारीख 21 फरवरी, 2019 को समाप्त हुई थी, उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट, अजनाला को व्यतिक्रम जमानत के लिए एक आवेदन किया गया । इस आवेदन को तारीख 25 फरवरी, 2019 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि विद्वान् उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट ने तारीख 23 फरवरी, 2019 के आदेश द्वारा विधिविरुद्ध क्रियाकलाप

(निवारण) अधिनियम, 1967 द्वारा यथा संशोधित [धारा 43घ(2) देखें] दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) की धारा 167 के अधीन पहले ही 90 दिन के समय को बढ़ाकर 180 दिन कर दिया गया था । तथापि, अपीलार्थी और उसके सह-अभियुक्त द्वारा एक पुनरीक्षण याचिका के द्वारा इस आदेश को चुनौती दी गई थी और वह पुनरीक्षण तारीख 25 मार्च, 2019 के आदेश द्वारा सफल रहा था, जिसके द्वारा विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने राष्ट्रीय अन्वेषण अधिकरण अधिनियम, 2008 के अधीन गठित विशेष न्यायालय होने के नाते निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "6. पुनरीक्षण याची की ओर से विद्वान् काउंसेल और राज्य की ओर से विद्वान् लोक अभियोजक को सुनने के पश्चात् मेरा यह मत है कि चूंकि विद्वान् लोक अभियोजक ने विधि की उस प्रतिपादना का खंडन नहीं किया है, जिसमें यह उपबंधित है कि इलाका मजिस्ट्रेट को विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 45घ(2) के अधीन चालान प्रस्तुत करने में व्यतिक्रम करने पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन अन्वेषण की अवधि का विस्तार करने के लिए किसी आवेदन को ग्रहण करने या जमानत मंजूर करने की कोई अधिकारिता नहीं है और विधिविरुद्ध क्रियाकलाप अधिनियम के मामलों पर विचार करने के लिए पंजाब सरकार द्वारा पारित उपरोक्त अधिसूचना को दृष्टिगत करते हुए सेशन न्यायालय या अपर सेशन न्यायालय के न्यायाधीश को प्रत्येक जिले में उक्त मामलों का विचारण करने के लिए अभिहित किया गया है, इसलिए चालान फाइल करने के लिए समय के विस्तार की ईप्सा करने के लिए आवेदन इलाका मजिस्ट्रेट के समक्ष कायम रखने योग्य नहीं था ।
>
> 7. अत: उक्त अधिसूचना तथा पुनरीक्षण याची की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा निर्दिष्ट निर्णयज विधियों को ध्यान में रखते हुए, केवल यह न्यायालय विशेष अभिहित न्यायालय होने के नाते विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 45घ(2) के अधीन किए गए किसी आवेदन पर आदेश पारित करने

के लिए सक्षम है । इससे यह अभिप्राय है कि इलाका मजिस्ट्रेट ऐसे किसी आवेदन पर कोई, यदि ऐसा आवेदन फाइल किया गया है और आदेश अर्थात् अपनी अधिकारिता के बिना पारित किया जाता है, आदेश पारित करने के लिए सक्षम नहीं था । इसलिए उक्त कारण से इलाका मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया आदेश विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है और वह आदेश इस पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करके अपास्त किए जाने योग्य है । तद्नुसार, यह पुनरीक्षण मंजूर किया जाता है और इलाका मजिस्ट्रेट का तारीख 13 फरवरी, 2019 का आदेश अपास्त किया जाता है । विचारण न्यायालय का अभिलेख इस आदेश की प्रति के साथ विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए और इस न्यायालय की फाइल अभिलेख कक्ष में सौंपी जाए ।"

4. एक दिन बाद तारीख 26 मार्च, 2019 को पुलिस अन्वेषण के पश्चात् विद्वान् विशेष न्यायाधीश के समक्ष एक आरोप पत्र फाइल किया गया, जिसमें तारीख 18 नवंबर, 2018 को दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अन्वेषण के अनुसरण में जो अपराध कारित किए गए थे, उनमें भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307, 452, 427, 341, 34 के साथ पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 की धारा 3, 4, 5, 6 और विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 13, 16, 18, 18ख और 20 का अवलंब लिया गया था । इसी बीच, पुनरीक्षण याचिका, जो तारीख 25 फरवरी, 2019 के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई थी, उसे विशेष न्यायाधीश द्वारा तारीख 11 अप्रैल, 2019 को खारिज कर दिया गया, जिन्होंने तारीख 25 मार्च, 2019 के आदेश की अवेक्षा करने के पश्चात् न्यायिक मजिस्ट्रेट के तारीख 13 फरवरी, 2019 के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई पुनरीक्षण याचिका मंजूर की थी, तो भी व्यतिक्रम जमानत मंजूर करने के लिए निम्नानुसार इनकार कर दिया गया :–

"10. नि:संदेह, पंजाब सरकार द्वारा तारीख 10 जून, 2014 को जारी की गई राजपत्र अधिसूचना द्वारा राज्य में प्रत्येक जिला मुख्यालय पर सेशन न्यायाधीश और प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश

विधिविरुद्ध क्रियाकलाप अधिनियम के अपराधों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायालय के रूप में अभिहित हैं । तथापि, स्थानीय व्यवस्था के अनुसार विधिविरुद्ध क्रियाकलापों से संबंधित सभी मामलों पर इस न्यायालय में विचार किया जाता है । इसलिए यह न्यायालय, एक विशेष न्यायालय होने के नाते दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन चालान या पुलिस रिपोर्ट सीधे रूप से प्राप्त करने के लिए सक्षम है । चूंकि चालान पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है और अब्दुल अजीज पीवी और अन्य **बनाम** राष्ट्रीय अन्वेषक अभिकरण [2015(1) आरसीआर (क्रिमिनल) 239] वाले मामले में के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि केवल इस कारण कि मामले के कतिपय पहलुओं का और आगे अन्वेषण किया जाना है, इसलिए ऐसी रिपोर्ट एक अंतिम रिपोर्ट से भिन्न कुछ और नहीं समझी जाती है और पुनरीक्षणकर्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन कानूनी जमानत के हकदार नहीं हैं ।

* * * * *

12. क्योंकि चालान पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है, इसलिए पुनरीक्षण आवेदक ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन व्यतिक्रम के माध्यम से जमानत के अपने अधिकार को खो दिया है । अत: इलाका मजिस्ट्रेट के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है, इसलिए यह पुनरीक्षण आवेदन असफल होता है और खारिज किया जाता है । फाइल अभिलेख कक्ष में सौंपी जाए ।"

5. उसी दिन अर्थात् 11 अप्रैल, 2019 को व्यतिक्रम जमानत के लिए तारीख 8 अप्रैल, 2019 के आवेदन को भी खारिज कर दिया गया था । उच्च न्यायालय ने तारीख 30 अक्तूबर, 2019 के आक्षेपित निर्णय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 और विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम तथा राष्ट्रीय अन्वेषण अधिकरण अधिनियम के कुछ उपबंधों को उपवर्णित करने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला :–

"दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के साथ पठित विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 43(घ), राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 6, 13 और 22 के संयुक्त निर्वचन से यह दर्शित होता है कि यदि अन्वेषण राज्य पुलिस द्वारा किया जा रहा है, तो मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के साथ पठित विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 43(क) के अधीन अन्वेषण की अवधि को 180 दिन तक विस्तार करने की शक्ति होगी और इसके पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 के उपबंधों के अनुसार मामले को सेशन न्यायालय के सुपुर्द करेगा, जबकि यदि अन्वेषण राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के अधीन अभिकरण द्वारा किया जाता है, तो इस शक्ति का प्रयोग विशेष न्यायालय द्वारा किया जाएगा और अभिकरण द्वारा चालान विशेष न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा ।

* * * * *

याची का यह पक्षकथन नहीं है कि अन्वेषण राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 6 के अधीन अभिकरण द्वारा किया गया था और सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करने तक राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 22(3) के अनुसार यह नहीं कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट को कोई शक्ति नहीं है और इसलिए तारीख 25 मार्च, 2019 का आदेश अवैध खामी से ग्रस्त है ।

याची की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि याची दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन व्यतिक्रम जमानत का हकदार है, जब एक बार अभियोजन पक्ष द्वारा तारीख 25 मार्च, 2019 को चालान प्रस्तुत कर दिया गया था और क्योंकि याची द्वारा आवेदन अगले दिन अर्थात् 26 मार्च, 2019 को फाइल किया गया था इसलिए संजय दत्त (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह जमानत उपलब्ध नहीं है ।

न्यायाधीश, अनन्य न्यायालय ने यह एक भलीभांति सकारण निष्कर्ष अभिलिखित किया था कि मात्र यह तथ्य कि अभी तक मंजूरी प्रदान नहीं की गई है, जमानत की सुविधा प्रदान करने का आधार नहीं है, क्योंकि यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है कि विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन कारित अपराध के अतिरिक्त, अभियुक्त भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307, 452, 427, 341, 34 के साथ पठित आयुध अधिनियम की धारा 25/54/59 और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, की धारा 3, 4, 5 और 6 के अधीन अपराध कारित करने के लिए भी विचारण का सामना कर रहा है, जिनके लिए याची को अभियोजित करने के लिए किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है ।

ऊपर अभिलिखित कारणों से और हितेन्द्र विष्णु ठाकुर **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [1994 (3) आरसीआर (क्रिमिनल) 156] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत याचिका में कोई गुणागुण न पाते हुए इसे खारिज किया जाता है ।"

6. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री कोलिन गोंसलवेस ने पूर्वोक्त दोनों अधिनियमितियों को विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट किया और इस तथ्य पर बल दिया कि जब एक बार विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन सभी अपराधों का विचारण करने के लिए एक अनन्य न्यायालय के रूप में विशेष न्यायालय का गठन किया गया है, तो ऐसे अपराध राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम से संबंधित अनुसूचित अपराध होने के कारण केवल विशेष न्यायालय को ही विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 43घ(2)(ख) के अधीन 90 दिन की अवधि का विस्तार करके 180 दिन करने की अनन्य अधिकारिता है । विद्वान् काउंसेल की यह दलील है कि ऐसी स्थिति में, आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व जब 90 दिन की अवधि पूरी हो गई थी, तो तारीख 21 फरवरी, 2019 के तुरंत पश्चात् व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन करने पर व्यतिक्रम जमानत का अजेय अधिकार उद्भूत हो गया था । वह आदेश,

जो विद्वान् उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2019 को अधिकारिता के बिना पारित किया गया था, उसे विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायालय द्वारा तारीख 25 मार्च, 2019 के आदेश द्वारा सही किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप व्यतिक्रम जमानत के लिए उसका अधिकार तारीख 26 मार्च, 2019 को आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व प्रवर्तनीय हो गया था । अत: विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय के निर्णय को दो आधारों पर प्रश्नगत किया है – प्रथमत:, इस तथ्य के बावजूद कि इन अपराधों का अन्वेषण राज्य पुलिस अभिकरण ने किया था, समय का विस्तार करने की अनन्य अधिकारिता केवल विशेष न्यायालय में निहित थी न कि इलाका मजिस्ट्रेट में । द्वितीयत:, उन्होंने अनेक निर्णयों का अवलंब लेते हुए यह भी दलील दी कि तारीख 26 मार्च, 2019 को आरोप पत्र फाइल करने से अपीलार्थी का व्यतिक्रम जमानत के लिए अधिकार निर्वापित नहीं हो गया था, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा गलत रूप से अभिनिर्धारित किया गया है ।

7. श्रीमती जसप्रीत गोगिया, विद्वान् अधिवक्ता जो पंजाब राज्य की ओर से हाजिर हुई, ने भी पूर्वोक्त दोनों अधिनियमितियों के उपबंधों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया । उन्होंने विशिष्ट रूप से राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 10 पर यह उल्लेख करते हुए बल दिया कि उक्त अधिनियम में किसी बात से किसी अनुसूचित अपराध का अन्वेषण करने और अभियोजन चलाने की राज्य सरकार की शक्तियां प्रभावित नहीं होती हैं । उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि संपूर्ण अन्वेषण केवल राज्य पुलिस द्वारा किया गया था न कि राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण द्वारा । उन्होंने यह दलील दी कि ऐसी स्थिति में, इलाका मजिस्ट्रेट को समय का विस्तार करने की अधिकारिता थी और तारीख 13 फरवरी, 2019 को इस प्रकार समय का विस्तार करने पर 90 दिन की अवधि समाप्त होने के पश्चात् अर्थात् तारीख 21 फरवरी, 2019 के पश्चात् व्यतिक्रम जमानत के लिए किया गया कोई आवेदन आवश्यक रूप से खारिज किया जाना चाहिए था । उन्होंने यह भी दलील दी कि व्यतिक्रम जमानत के लिए प्रथम आवेदन, जो तारीख 25 मार्च, 2019 को या इससे पूर्व फाइल किया गया था, उसे खारिज कर दिए

जाने के कारण उसका महत्व समाप्त हो गया था और व्यतिक्रम जमानत के लिए फाइल किया गया तारीख 8 अप्रैल, 2019 का आवेदन स्पष्ट रूप से तारीख 26 मार्च, 2019, जब आरोप पत्र फाइल किया गया था, के पश्चात् फाइल किया गया था और इसलिए विद्वान् विशेष न्यायाधीश के तारीख 11 अप्रैल, 2019 के आदेश द्वारा इसे ठीक ही खारिज किया गया था ।

8. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् इस प्रक्रम पर इन तीनों अधिनियमितियों - संहिता, विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम और राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के सभी सुसंगत उपबंधों को उपवर्णित करना आवश्यक है, जिनसे हमारा प्रत्यक्ष रूप से सरोकार है ।

9. यह उल्लेख करना आवश्यक है कि संहिता में "न्यायालय" अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है । दूसरी ओर, संहिता की धारा 6 में दंड न्यायालयों के वर्गों को निम्नलिखित रूप में निर्दिष्ट किया गया है :–

> "**6. दंड न्यायालयों के वर्ग** – उच्च न्यायालयों और इस संहिता से भिन्न किसी विधि के अधीन गठित न्यायालयों के अतिरिक्त, प्रत्येक राज्य में निम्नलिखित वर्गों के दंड न्यायालय होंगे, अर्थात् :–
>
> (i) सेशन न्यायालय ;
>
> (ii) प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट और किसी महानगर क्षेत्र में महानगर मजिस्ट्रेट ;
>
> (iii) द्वितीय वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट ; और
>
> (iv) कार्यपालक मजिस्ट्रेट ।"

इसके पश्चात् सेशन न्यायालय को ऐसे न्यायालय के रूप में निर्दिष्ट किया गया है जो राज्य सरकार द्वारा संहिता की धारा 9(1) के अधीन प्रत्येक सेशन खंड के लिए स्थापित किया जाता है ।

10. संहिता की धारा 26 में उन न्यायालयों को निर्दिष्ट किया गया

है, जिनके द्वारा अपराध विचारणीय हैं । हमारा सरोकार प्रत्यक्ष रूप से धारा 26(ख) से है जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "**26. न्यायालय, जिनके द्वारा अपराध विचारणीय हैं** – इस संहिता के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए,
>
> * * * * *
>
> (ख) किसी अन्य विधि के अधीन किसी अपराध का विचारण, जब उस विधि में इस निमित्त कोई न्यायालय उल्लिखित है, तब उस न्यायालय द्वारा किया जाएगा और जब कोई न्यायालय इस प्रकार उल्लिखित नहीं है तब –
>
> (i) उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, या
>
> (ii) या किसी अन्य ऐसे न्यायालय द्वारा किया जा सकता है जिसके द्वारा उसका विचारणीय होना प्रथम अनुसूची में दर्शित किया गया है ।"

11. संहिता की धारा 167 में यह स्पष्ट किया गया है कि जब कभी कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया गया है और अभिरक्षा में निरुद्ध है, तो मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून अवधि के लिए दंडनीय अपराध से संबंधित अन्वेषण के लिए समय मामूली तौर पर 15 दिनों की अवधि से परे नहीं हो सकता है, किंतु मजिस्ट्रेट का यह समाधान होने पर कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान हैं तो ऐसी अवधि का अधिकतम 90 दिन की अवधि तक विस्तार किया जा सकता है – संहिता की धारा 167(2) का प्रथम परंतुक (क)(i) देखें । उक्त परंतुक में यह भी उल्लिखित है कि नब्बे दिन की अधिकतम अवधि की समाप्ति पर अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया जाएगा यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और दे देता है और यह समझा जाएगा कि इस प्रकार जमानत पर छोड़ा गया प्रत्येक व्यक्ति इस अध्याय के प्रयोजनों के लिए अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन छोड़ा गया है ।

12. संहिता में इसके अंतिम भाग में प्रथम अनुसूची में इसके भाग-2 में अन्य विधियों के अधीन अपराधों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप

में उपवर्णित है :–

प्रथम अनुसूची

अपराधों का वर्गीकरण

।।–अन्य विधियों के अधीन अपराधों का वर्गीकरण

अपराध	संज्ञेय या असंज्ञेय	जमानतीय या अजमानतीय	किस न्यायालय द्वारा विचारणीय है
यदि मृत्यु, आजीवन कारावास या सात वर्ष से अधिक कारावास के लिए दंडनीय है	संज्ञेय	अजमानतीय	सेशन न्यायालय
यदि तीन वर्ष और इससे ऊपर किंतु सात वर्ष से अनधिक के कारावास के लिए दंडनीय है	यथोपरि	यथोपरि	प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट
यदि तीन वर्ष से अन्यून के कारावास या केवल जुर्माने से दंडनीय है	असंज्ञेय	जमानतीय	कोई मजिस्ट्रेट

13. विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम में "विधिविरुद्ध क्रियाकलाप" और "विधिविरुद्ध संगम" के संबंध में उपबंध हैं और धारा 2 (ण) और 2(त) के अधीन परिभाषित अनुसार विधिविरुद्ध क्रियाकलाप और विधिविरुद्ध संगम दोनों को प्रतिषिद्ध किया गया है । इसमें धारा 2(ट), 2(ठ) और 2(ड) के अधीन यह भी परिभाषित किया गया है कि आतंकवादी कार्य, आतंकवादी गैंग और आतंकवादी संगठन क्या हैं और

इनमें से प्रत्येक को अपराधों के रूप में अभिनिषिद्ध किया गया है जो इसके पश्चात् इसके उपबंधों में दर्शाए गए हैं । इस मामले में हमारे दृष्टिकोण से जो महत्वपूर्ण है वह विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 2(1)(घ) में दी गई "न्यायालय" की परिभाषा है, जो निम्नलिखित है :–

> "**2. परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –
>
> * * * * *
>
> (घ) 'न्यायालय' से संहिता के अधीन इस अधिनियम के अंतर्गत आने वाले अपराधों का विचारण करने के लिए अधिकारिता रखने वाला कोई दंड न्यायालय अभिप्रेत है और इसमें राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008 की धारा 11 के अधीन या धारा 21 के अधीन गठित कोई विशेष न्यायालय सम्मिलित है ;"

विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 43घ(2) में अंतर्विष्ट उपबंध समान रूप से महत्वपूर्ण है, जो निम्नलिखित रूप में उपवर्णित है :–

> "**43घ. संहिता के कतिपय उपबंधों का उपांतरित रूप में लागू होना** –
>
> * * * * *
>
> (2) संहिता की धारा 167 ऐसे किसी मामले के संबंध में, जिसमें इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध अंतर्वलित है, इस उपांतरण के अधीन रहते हुए लागू होगी कि उपधारा (2) में –
>
> (क) "पंद्रह दिन", "नब्बे दिन" और "साठ दिन" के प्रतिनिर्देशों का, जहां कहीं वे आते हैं, यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे क्रमश: "तीस दिन", "नब्बे दिन" और "नब्बे दिन" के प्रतिनिर्देश है ; और
>
> (ख) परंतुक के पश्चात् निम्नलिखित परंतुक

अंत:स्थापित किए जाएंगे, अर्थात् :–

> परंतु यह और कि यदि नब्बे दिन की उक्त अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण करना संभव नहीं है तो न्यायालय, यदि वह लोक अभियोजक की अन्वेषण की प्रगति और नब्बे दिनों की उक्त अवधि से परे, अभियुक्त को निरुद्ध रखने के लिए विनिर्दिष्ट कारणों को उपदर्शित करने वाली रिपोर्ट से संतुष्ट है, उक्त अवधि को एक सौ अस्सी दिन तक विस्तारित कर सकेगा :
>
> परंतु यह भी कि यदि इस अधिनियम के अधीन अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए, न्यायिक अभिरक्षा में स्थित किसी व्यक्ति को न्यायिक अभिरक्षा से पुलिस अभिरक्षा में सौंपने का अनुरोध करता है तो वह ऐसा करने के कारणों का कथन करते हुए एक शपथपत्र फाइल करेगा और ऐसी पुलिस अभिरक्षा का अनुरोध करने के लिए किसी विलंब, यदि कोई हो, को भी स्पष्ट करेगा ।"

14. इन उपबंधों का सरसरी तौर पर अनुशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 16, 17, 18, 18क, 18ख, 19, 20, 22-ख, 22ग और 23 के अधीन अपराध, ऐसे अपराध होने के कारण जिनमें अंतर्विष्ट अधिकतम दंडादेश सात वर्ष से अधिक है, इन्हें संहिता की प्रथम अनुसूची के भाग-2 के साथ पढ़ने पर, वे अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय होंगे । राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के अधिनियमित होने के पश्चात् ही "न्यायालय" की परिभाषा को इसमें उन विशेष न्यायालयों को सम्मिलित करते हुए विस्तारित किया गया था, जो राष्ट्रीय अन्वेषण अधिनियम की धारा 11 या धारा 22 के अधीन गठित होने थे ।

15. अब हम राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम पर आते हैं, उक्त अधिनियम की प्रस्तावना में इस अधिनियम के उपबंधों का उद्देश्य निम्नलिखित रूप में उपदर्शित होता है :–

"भारत की संप्रभुता, सुरक्षा और अखंडता, राज्य कि सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्रभावित करने वाले अपराधों और अंतरराष्ट्रीय संधियों, करारों, अभिसमयों तथा संयुक्त राष्ट्र, उसके अभिकरणों और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों के संकल्पों को कार्यान्वित करने के लिए अधिनियमित किए गए अधिनियमों के अधीन अपराधों का अन्वेषण और अभियोजन करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक अन्वेषण अभिकरण का गठन करने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियम ।"

धारा 2(छ) में "अनुसूचित अपराध" को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :–

"2. परिभाषाएं – (1) इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

* * * * *

(छ) 'अनुसूचित अपराध' से अनुसूची में विनिर्दिष्ट अपराध अभिप्रेत है ;

धारा 2(ज) में "अनुसूचित न्यायालय" को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :–

"2. **परिभाषाएं** – (1) इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

* * * * *

(ज) 'विशेष न्यायालय' से, यथास्थिति, धारा 11 या धारा 22 के अधीन गठित विशेष न्यायालय अभिप्रेत है ;"

16. धारा 3 एक राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण का गठन करती है, जो अधिनियमों के अधीन अनुसूची में विनिर्दिष्ट अपराधों का अभियोजन करने के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा गठित एक विशेष अभिकरण है । यह उल्लेखनीय है कि विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम उक्त अनुसूची की मद 2 है । धारा 10, जिसका राज्य द्वारा जोरदार अवलंब लिया गया है, निम्नलिखित प्रकार से है :–

"**10. अनुसूचित अपराधों का अन्वेषण करने की राज्य सरकार की शक्ति** – इस अधिनियम में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, इस अधिनियम की कोई बात किसी अनुसूचित अपराध या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन अन्य अपराधों का अन्वेषण और अभियोजन करने की राज्य सरकार की शक्तियों पर प्रभाव नहीं डालेगी ।"

धारा 11 और 22, जिनमें क्रमश: केंद्रीय सरकार और राज्य सरकार की सेशन न्यायालयों को विशेष न्यायालयों के रूप में अभिहित करने की शक्ति का उपबंध किया गया है, निम्नलिखित प्रकार से हैं :–

"**11. विशेष न्यायालयों का गठन करने की केंद्रीय सरकार की शक्ति** – (1) केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, अनुसूचित अपराधों के विचारण के लिए ऐसे क्षेत्र या क्षेत्रों के लिए या, ऐसे मामलों के वर्ग या समूह के लिए, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं, एक या अधिक विशेष न्यायालयों का गठन करेगी ।

(2) जहां किसी विशेष न्यायालय की अधिकारिता के बारे में कोई प्रश्न उद्भूत होता है वहां वह प्रश्न केंद्रीय सरकार को निर्देशित किया जाएगा जिसका उस विषय में विनिश्चय अंतिम होगा ।

(3) विशेष न्यायालय का पीठासीन न्यायाधीश ऐसा न्यायाधीश होगा जो केंद्रीय सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश पर नियुक्त किया जाएगा ।

(4) अभिकरण, विशेष न्यायालय में पीठासीन होने वाले न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को आवेदन कर सकता है ।

(5) मुख्य न्यायमूर्ति, उपधारा (4) के अधीन आवेदन की प्राप्ति पर, यथासंभव शीघ्र और सात दिन के पश्चात् विशेष न्यायालय में पीठासीन होने के लिए नियुक्त किए जाने वाले न्यायाधीश के नाम की सिफारिश करेगा ।

(6) केंद्रीय सरकार, यदि अपेक्षित हो, विशेष न्यायालय में,

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश पर, एक या अधिक अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सकेगी ।

(7) विशेष न्यायालय के न्यायाधीश या अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए कोई व्यक्ति तभी अर्हित होगा जब वह ऐसी नियुक्ति से ठीक पूर्व किसी राज्य में सेशन न्यायाधीश या अपर सेशन न्यायाधीश हो ।

(8) शंकाओं को दूर करने के लिए, यह उपबंध किया जाता है कि विशेष न्यायालय के न्यायाधीश या अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्त व्यक्ति द्वारा उस सेवा में, जिससे वह संबंधित है, उसे लागू होने वाले नियमों के अधीन अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर लेना उसके ऐसे न्यायाधीश या अपर न्यायाधीश के रूप में बने रहने को प्रभावित नहीं करेगा और केंद्रीय सरकार आदेश द्वारा यह निदेश दे सकेगी कि वह किसी विनिर्दिष्ट तारीख तक या उसके समक्ष मामले या मामलों का, जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, विचारण पूरा होने तक, न्यायाधीश बना रहेगा ।

(9) जहां विशेष न्यायालय में एक या अधिक अपर न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं वहां विशेष न्यायालय का न्यायाधीश, समय-समय पर, साधारण या विशेष लिखित आदेश द्वारा सभी न्यायाधीशों के, जिनके अंतर्गत वह स्वयं और अपर न्यायाधीश भी हैं, बीच विशेष न्यायालय के कारबार के वितरण के लिए और अपनी अनुपस्थिति या किसी अपर न्यायाधीश की अनुपस्थिति की दशा में अत्यावश्यक कारबार के निपटारे के लिए भी उपबंध कर सकेगा ।

22. विशेष न्यायालय गठित करने की राज्य सरकार की शक्ति – (1) राज्य सरकार, अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी या सभी अधिनियमितियों के अधीन अपराधों के विचारण के लिए, एक या अधिक विशेष न्यायालयों का गठन कर सकेगी ।

(2) इस अध्याय के उपबंध उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा गठित किए गए विशेष न्यायालयों को लागू होंगे और निम्नलिखित उपांतरणों के अधीन रहते हुए प्रभावी होंगे, अर्थात् :–

(i) धारा 11 और 15 में 'केंद्रीय सरकार' के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे 'राज्य सरकार' के प्रति निर्देश हैं ;

(ii) धारा 13 की उपधारा (1) में, 'अभिकरण' के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह 'राज्य सरकार के अन्वेषण अभिकरण' के प्रति निर्देश हैं ;

(iii) धारा 13 की उपधारा (3) में, 'भारत के महान्यायवादी' के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह 'राज्य के महाधिवक्ता' के प्रति निर्देश हैं ।

(3) किसी विशेष न्यायालय को इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता का, इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध के मामले में उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा कोई विशेष न्यायालय गठित किए जाने तक संहिता में किसी बात के होते हुए भी, उस खंड के सेशन न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाएगा जिसमें ऐसा अपराध किया गया है और उसको सभी शक्तियां होंगी तथा वह इस अध्याय के अधीन उपबंधित प्रक्रिया का पालन करेगा ।

(4) उस तारीख से ही, जब राज्य सरकार द्वारा विशेष न्यायालय का गठन किया जाता है, इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन राज्य सरकार द्वारा अन्वेषण किए गए किसी अपराध का विचारण, जिसका विशेष न्यायालय के समक्ष किया जाना अपेक्षित होता, उस तारीख को, जिस तारीख को उसका गठन किया गया है, उस न्यायालय में अंतरित हो जाएगा ।"

धारा 13 में विशेष न्यायालयों की अधिकारिता का निम्नलिखित रूप में उपबंध किया गया है :–

"**13. विशेष न्यायालयों की अधिकारिता** – (1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, अभिकरण द्वारा अन्वेषण किए गए प्रत्येक अनुसूचित अपराध का विचारण केवल उसी विशेष न्यायालय द्वारा किया जाएगा जिसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर वह

अपराध किया गया था ।

(2) यदि, किसी राज्य में विद्यमान स्थिति की अत्यावश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, –

(क) ऋजु, निष्पक्ष या त्वरित विचारण संभव नहीं है ; या

(ख) शांति भंग हुए बिना या अभियुक्त, साक्षियों, लोक अभियोजक या विशेष न्यायालय के न्यायाधीश या इनमें से किसी की सुरक्षा को गंभीर खतरे में डाले बिना विचारण व्यवहार्य नहीं है ; या

(ग) यह अन्यथा न्याय के हित में नहीं है, तो उच्चतम न्यायालय किसी विशेष न्यायालय के समक्ष लंबित किसी मामले को उसी राज्य में या किसी अन्य राज्य में किसी अन्य विशेष न्यायालय को अंतरित कर सकेगा और उच्च न्यायालय उस राज्य में स्थित किसी विशेष न्यायालय के समक्ष लंबित किसी मामले को उसी राज्य के भीतर किसी अन्य विशेष न्यायालय को अंतरित कर सकेगा ।

(3) यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय की धारा के अधीन कार्यवाही या तो केंद्रीय सरकार के या हितबद्ध किसी पक्षकार के आवेदन पर कर सकेगा और ऐसा कोई आवेदन समावेदन के माध्यम से किया जाएगा जो उस दशा के सिवाय जब आवेदक भारत का महान्यायवादी है, शपथ-पत्र या प्रतिज्ञान द्वारा समर्थित होगा ।"

धारा 14, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि विशेष न्यायालय अनुसूचित अपराधों से भिन्न अपराधों का भी विचारण कर सकेंगे, निम्नलिखित प्रकार से है :–

"**14. अन्य अपराधों के संबंध में विशेष न्यायालयों की शक्तियां** – (1) विशेष न्यायालय, जब वह किसी अपराध का विचारण कर रहा हो, उसी विचारण में ऐसे किसी अन्य अपराध का

भी विचारण कर सकेगा जिसका अभियुक्त पर, संहिता के अधीन, आरोप लगाया जा सकेगा, यदि वह अपराध ऐसे अन्य अपराध से संशक्त है ।

(2) यदि किसी अपराध के इस अधिनियम के अधीन किसी विचारण के अनुक्रम में यह पाया जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति ने इस अधिनियम के अधीन या किसी अन्य विधि के अधीन कोई अन्य अपराध किया है तो विशेष न्यायालय ऐसे व्यक्ति को ऐसे अन्य अपराध के लिए दोषसिद्ध ठहरा सकेगा और, यथास्थिति, इस अधिनियम द्वारा या ऐसी अन्य विधि के अधीन प्राधिकृत कोई दंडादेश पारित कर सकेगा या दंड अधिनिर्णीत कर सकेगा ।"

धारा 16 महत्वपूर्ण है और इसमें विशेष न्यायालयों की प्रक्रिया और शक्तियों को निम्नलिखित रूप में उपवर्णित किया गया है :–

"**16. विशेष न्यायालयों की प्रक्रिया और शक्तियां** – (1) विशेष न्यायालय ऐसे तथ्यों का परिवाद प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर अभियुक्त को उसके विचारण के लिए सुपुर्द किए बिना किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा ।

(2) जहां विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय कोई अपराध तीन वर्ष से अनधिक की अवधि के कारावास से या जुर्माने से, या दोनों से दंडनीय है, वहां विशेष न्यायालय, संहिता की धारा 260 की उपधारा (1) या धारा 262 में किसी बात के होते हुए भी, अपराध का विचारण संहिता में विहित प्रक्रिया के अनुसार संक्षिप्त रूप में कर सकेगा और संहिता की धारा 263 से धारा 265 तक के उपबंध जहां तक हो सके ऐसे विचारण को लागू होंगे :

परंतु जब, इस उपधारा के अधीन संक्षिप्त विचारण के अनुक्रम में, विशेष न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि उसका संक्षिप्त रूप में विचारण करना वांछनीय नहीं है तो विशेष न्यायालय ऐसे किन्हीं साक्षियों को, जिनकी परीक्षा की जा चुकी है, पुन: बुलाएगा और ऐसे अपराध के विचारण

के लिए संहिता के उपबंधों द्वारा उपबंधित रीति में मामले की पुन: सुनवाई करने के लिए अग्रसर होगा और उक्त उपबंध विशेष न्यायालय को और उसके संबंध में इस प्रकार लागू होंगे जैसे वे किसी मजिस्ट्रेट को या उसके संबंध में लागू होते हैं :

परंतु यह और कि इस धारा के अधीन किसी संक्षिप्त विचारण किसी दोषसिद्धि के मामले में विशेष न्यायालय के लिए एक वर्ष से अनधिक की अवधि के कारावास या ऐसे जुर्माने का, जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडादेश पारित करना विधिपूर्ण होगा ।

(3) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, विशेष न्यायालय को, किसी अपराध के विचारण के प्रयोजन के लिए सेशन न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी और वह जहां तक हो सके ऐसे अपराध का विचारण सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए संहिता में विहित प्रक्रिया के अनुसार इस प्रकार करेगा मानो वह सेशन न्यायालय हो ।

(4) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन विशेष न्यायालय को अंतरित प्रत्येक मामले पर इस प्रकार कार्यवाही की जाएगी मानो ऐसा मामला संहिता की धारा 406 के अधीन उस विशेष न्यायालय को अंतरित किया गया हो ।

(5) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, किंतु संहिता की धारा 299 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, विशेष न्यायालय, यदि वह ठीक समझे और उसके द्वारा लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से, अभियुक्त या उसके प्लीडर की अनुपस्थिति में विचारण की कार्यवाही कर सकेगा और प्रतिपरीक्षा के लिए साक्षी को पुन: बुलाने के अधिकार के अधीन रहते हुए किसी साक्षी का साक्ष्य अभिलिखित कर सकेगा ।"

17. राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की स्कीम यह है कि अधिनियम की अनुसूची में अंतर्विष्ट अधिनियमितियों के अधीन अब अपराधों का विचारण अनन्य रूप से इस अधिनियम के अधीन गठित

विशेष न्यायालयों द्वारा किया जाना है । इन्हें अधिनियम की धारा 11 के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा या धारा 22 के अधीन राज्य सरकार द्वारा गठित किया जा सकेगा । प्रस्तुत मामले के तथ्यों के आधार पर, हमारा सरोकार धारा 22 से है क्योंकि पंजाब राज्य के भीतर विशेष न्यायालय तारीख 10 जून, 2014 की अधिसूचना द्वारा गठित किए गए हैं, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

"भाग 3

पंजाब सरकार

गृह मामले और न्याय विभाग

(न्यायिक-1 शाखा)

अधिसूचना

10 जून, 2014

सं. का. आ. 141/सी.ए.34/2008/एस.22/2014. – पंजाब के राज्यपाल राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008 (2008 का केंद्रीय अधिनियम सं. 34) की धारा 22 की उपधारा (1) के अधीन प्रदत्त शक्तियों और इस बाबत उन्हें सामर्थ्यकारी बनाने वाली सभी अन्य शक्तियों का प्रयोग करते हुए, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से पूर्वोक्त अधिनियम से उपाबद्ध अनुसूची में यथा विनिर्दिष्ट उन अपराधों के विचारण के लिए, जिनका राज्य पुलिस द्वारा अन्वेषण किया गया है, राज्य में प्रत्येक जिला मुख्यालय पर सेशन न्यायाधीश के न्यायालयों और प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश के न्यायालयों को (उनकी अपनी-अपनी अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र के लिए) विशेष न्यायालय गठित करते हैं ।"

18. यह देखने में आता है कि पूर्वोक्त अधिसूचना राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 22(1) के अधीन जारी की गई थी । उल्लेखनीय महत्वपूर्ण बात है यह है कि धारा 22(2)(ii) के अधीन धारा 13(1) में किए गए केंद्रीय अभिकरण के प्रति निर्देश का अर्थ राज्य

सरकार के अन्वेषण अभिकरण – अर्थात् इस मामले में राज्य पुलिस के प्रति निर्देश के रूप में लगाया जाएगा । इसके पश्चात्, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि धारा 22 की उपधारा (3) द्वारा किसी विशेष न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता का, राज्य सरकार द्वारा कोई विशेष न्यायालय अभिहित किए जाने तक, संहिता में किसी बात के होते हुए भी, केवल उस खंड के सेशन न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाएगा जिसमें ऐसा अपराध किया गया है ; और धारा 22 की उपधारा (4) द्वारा उस तारीख से ही, जब राज्य सरकार द्वारा विशेष न्यायालय अभिहित किया जाता है, राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन राज्य सरकार द्वारा अन्वेषण किए गए किसी अपराध का विचारण, उस तारीख को जिसको यह अभिहित किया गया है, उस न्यायालय में अंतरित हो जाएगा ।

19. राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 13(1), जो पुन: एक सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है, जिसमें संहिता में किसी बात के होते हुए भी है, को धारा 22(2)(ii) के साथ पढ़ने पर, यह कहा गया है कि राज्य सरकार के अन्वेषण अधिकरण द्वारा अन्वेषण किए गए प्रत्येक अनुसूचित अपराध का विचारण अनन्य रूप से केवल उसी विशेष न्यायालय द्वारा किया जाएगा जिसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर वह अपराध किया गया था ।

20. जब इन उपबंधों को विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 2(1)(घ) और धारा 43घ(2) में दिए गए परंतुकों के साथ पढ़ा जाए, तो दोनों अधिनियमों की स्कीम, जिन्हें एक-साथ पढ़ा जाना चाहिए, पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है । धारा 43घ(2)(ख) में दिए गए प्रथम परंतुक के अधीन, संहिता की धारा 167(2) के प्रथम परंतुक द्वारा उपदर्शित 90 दिन की अवधि को अधिकतम 180 दिन की अवधि तक विस्तारित किया जा सकता है यदि "न्यायालय" लोक अभियोजक की अन्वेषण की प्रगति और अभियुक्त को 90 दिनों की अवधि से परे निरुद्ध रखने के लिए विनिर्दिष्ट कारणों को उपदर्शित करने वाली रिपोर्ट से संतुष्ट है । "न्यायालय" को जब विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण अधिनियम की धारा 2(1)(घ) में अंतर्विष्ट विस्तारित परिभाषा के साथ

पढ़ा जाए, तो यह अब राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण की धारा 22 के अधीन गठित विशेष न्यायालय का उल्लेख करती है । अत: इन उपबंधों के अनुशीलन से जो बात स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन सभी अपराधों के लिए केवल विशेष न्यायालय को ऐसे अपराधों का विचारण करने की अनन्य अधिकारिता है । यह बात राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 16 को पढ़ने पर भी और अधिक स्पष्ट हो जाती है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि विशेष न्यायालय ऐसे तथ्यों का परिवाद प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर अभियुक्त को इसके विचारण के लिए सुपुर्द किए बिना किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा । राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम की धारा 15(2) को पढ़ने से समान रूप से जो बात स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि भले ही अपराध तीन वर्ष से अनधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय हों, केवल विशेष न्यायालय, यद्यपि एक संक्षिप्त रीति में यदि वह ऐसा करना उचित समझता है, ऐसे अपराध का विचारण करेगा । ऊपर उल्लिखित उपबंधों का सिंहावलोकन करने पर, धारा 13 को विशिष्ट रूप से राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण की धारा 22(2)(ii) के साथ पढ़ने पर, पंजाब राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल की ओर से उक्त अधिनियम की धारा 10 के आधार पर दी गई दलील निराधार है चूंकि विशेष न्यायालय को राज्य के अन्वेषक अभिकरण द्वारा अन्वेषण किए गए प्रत्येक अनुसूचित अपराध की अनन्य अधिकारिता है ।

21. राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के अधिनियमित होने से पूर्व, विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन अपराध दो प्रकार के थे – वे जिनके लिए अधिकतम कारावास सात वर्ष से ऊपर था और जो अधिकतम सात वर्ष और इससे कम के कारावास के साथ थे । संहिता, जैसी कि वह अन्य विधियों के अधीन अपराधों पर लागू होती है, के अधीन ऐसे अपराध जिनमें अधिकतम दंडादेश सात वर्ष या इससे कम है, मजिस्ट्रेट के न्यायालयों द्वारा विचारणीय हैं, जबकि ऐसे अपराध जिनमें अधिकतम दंडादेश सात वर्ष से अधिक है, सेशन

न्यायालयों द्वारा विचारणीय हैं । इस स्कीम को 2008 के अधिनियम द्वारा पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया है क्योंकि सभी अनुसूचित अपराधों अर्थात् विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन आने वाले सभी अपराधों का विचारण, अन्वेषण चाहे राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण द्वारा किया गया है या राज्य सरकार के अन्वेषण अभिकरणों द्वारा किया गया है, अनन्य रूप से इस अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालयों द्वारा किया जाएगा । या तो केंद्रीय सरकार द्वारा या राज्य सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना के द्वारा किसी अभिहित न्यायालय के अभाव में, केवल सेशन न्यायालय का आश्रय लिया जाना है । इस प्रकार, पूर्वोक्त स्कीम के अधीन जो बात स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि जहां तक विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन सभी अपराधों का संबंध है, धारा 43-घ(2)(ख) में दिए गए प्रथम परंतुक के अधीन समय का विस्तार करने के लिए मजिस्ट्रेट की अधिकारिता विद्यमान नहीं है और किसी विशेष न्यायालय को विनिर्दिष्ट करते हुए किसी अधिसूचना के अभाव में, "न्यायालय" या तो सेशन न्यायालय है या स्वयं विशेष न्यायालय है । आक्षेपित निर्णय, जिसमें प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया है, गलत है क्योंकि इसमें राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण की धारा 13 के साथ पठित धारा 22(2) पर विचार नहीं किया गया है । साथ ही, आक्षेपित निर्णय में राष्ट्रीय अन्वेषण अधिनियम की धारा 16(1) पर भी विचार नहीं किया गया है जिसमें यह उपबंधित है कि विशेष न्यायालय, अन्य बातों के साथ-साथ, ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर अभियुक्त को उसके विचारण के लिए सुपुर्द किए बिना किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा ।

22. दूसरा विवादास्पद प्रश्न, जो इस मामले के तथ्यों के आधार पर उद्भूत होता है, वह व्यतिक्रम जमानत मंजूर करने का प्रश्न है । पहले ही यह देखा गया है कि जब एक बार किसी अपराध के अन्वेषण के लिए अधिकतम अवधि समाप्त हो जाती है तो धारा 167(2)(क) के परंतुक के अधीन अभियुक्त को जमानत पर छोड़ दिया जाएगा, यह संहिता द्वारा प्रदान किया गया एक अजेय अधिकार है । इस अजेय अधिकार का विस्तार अनेक निर्णयों की विषय-वस्तु रहा है । **हितेन्द्र**

विष्णु ठाकुर बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में के निर्णय से शुरुआत की जा सकती है, जिसमें संहिता की धारा 167 के साथ पठित आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'टाडा' कहा गया है) के उपबंधों के अधीन "व्यतिक्रम जमानत" के बारे में उल्लेख किया गया है, जो कि निम्नलिखित है :–

> "19. टाडा की धारा 20(4) के अनुसार संहिता की धारा 167, ऐसे मामले के संबंध में जिसमें इस अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध अंतर्वलित है, उसमें विनिर्दिष्ट उपांतरणों के अधीन रहते हुए, लागू होगी । उसके खंड (क) में यह उपबंध है कि उसकी उपधारा (1) में 'न्यायिक मजिस्ट्रेट' या कार्यपालक मजिस्ट्रेट या विशेष 'कार्यपालक मजिस्ट्रेट' के प्रति निर्देश है जब कि उसके खंड (ख) में यह उपबंध है कि धारा 167 की उपधारा (2) में '15 दिन', '90 दिन' और '60 दिन' के प्रति निर्देशों का, जहां-जहां वे आते हैं, यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे क्रमश: '60 दिन' 'एक वर्ष' और 'एक वर्ष' के प्रति निर्देश है । तारीख 22 मई, 1993 से 1993 के संशोधन अधिनियम सं. 43 द्वारा यह धारा सन् 1993 में संशोधित की गई तथा खंड (ख) में उल्लिखित 'एक वर्ष' और 'एक वर्ष' की अवधियां, धारा 167 की उपधारा (2) के उपांतरण द्वारा घटाकर क्रमश: '180 दिन' और '180 दिन' कर दी गई । टाडा की धारा 20 की उपधारा (4) के खंड (ख) के पश्चात् एक अन्य खंड (खख) सन्निविष्ट किया गया, जिसकी भाषा निम्नलिखित है –
>
> (खख) उपधारा (2) में, परंतुक के पश्चात् निम्नलिखित परंतुक अंत:थापित किया जाएगा, अर्थात् –
>
> परंतु यह और कि यदि एक सौ अस्सी दिन की उक्त अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करना संभव नहीं है तो अभिहित न्यायालय लोक अभियोजक की रिपोर्ट पर, जिसमें अन्वेषण की प्रगति और एक सौ अस्सी दिन की उक्त अवधि

---

[1] [1995] 2 उम. नि. प. 104 = (1994) 4 एस. सी. सी. 602.

से अधिक अभियुक्त के निरोध के विनिर्दिष्ट कारण उपदर्शित किए गए हों, उक्त अवधि को एक वर्ष तक बढ़ा सकेगा, और ।"

20. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) में यह अधिकथित है कि वह मजिस्ट्रेट जिसके पास अभियुक्त व्यक्ति भेजा जाता है अभियुक्त का उस धारा में विनिर्दिष्ट अवधि तक ऐसी अभिरक्षा में निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत कर सकता है । उपधारा (2) का परंतुक समय की उस ऊपरी सीमा को नियत करती है जिसके भीतर अन्वेषण पूरा कर लिया जाना चाहिए और यदि उक्त विहित अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा नहीं किया जाता है तो अभियुक्त को यह ईप्सा करने का अधिकार मिल जाएगा कि उसे जमानत पर छोड़ दिया जाए और यदि अभियुक्त जमानत प्रस्तुत करने के लिए तैयार है तो मजिस्ट्रेट उसे जमानत पर छोड़ देगा तथा उसकी ऐसी निर्मुक्ति की बाबत यह समझा जाएगा मानो उसे दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 38 के अधीन जमानत मंजूर कर दी गई हो । यों तो उक्त अध्याय में 436 से 450 तक धाराएं हैं किंतु हमारे प्रयोजनों के लिए संहिता की केवल धारा 437 और 439 सुसंगत हैं । ये दोनों धाराएं न्यायालय को यह शक्ति प्रदान करती हैं कि वह अभियुक्त को जमानत पर छोड़े । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की अधिनियमिति के पीछे निहित उद्देश्य यह था कि किसी अभियुक्त को अन्वेषण के लंबित रहते हुए किसी अनुचित रूप से लंबी अवधि तक अभिरक्षा में न रहने दिया जाए । तथापि, इस बात को महसूस करते हुए कि हर मामले में अन्वेषण एजेंसी के लिए यह संभव नहीं है कि वह, यथास्थिति, 24 घंटों के अथवा 15 दिनों के भीतर अन्वेषण पूरा कर ले भले ही उसने कितनी ही तत्परता से अन्वेषण क्यों न किया हो, संसद् ने उस अवधि को वह ऊपरी सीमा विहित करते हुए संहिता की धारा 167(2) में एक परंतुक अंत:स्थापित किया जिसके भीतर अन्वेषण पूरा किया जाना चाहिए । इस प्रकार टाडा की धारा 20(4) के साथ पठित धारा 167 वस्तुत: "जमानत की मंजूरी" का उपबंध नहीं है कि किंतु वह धारा

उस अधिकतम अवधि के संबंध में व्यवहृत होती है जिसके भीतर किसी अपराध को करने का अभियुक्त अभिरक्षा और निरोध में रखा जा सकता है जिससे कि अन्वेषण एजेंसी अन्वेषण पूरा करके यदि आवश्यक हो तो आरोप पत्र फाइल कर सके । अत: टाडा की धारा 20(ख) के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) का परंतुक, यथास्थिति, अधिकतम अथवा विस्तारित अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करने में अन्वेषण एजेंसी की चूक के कारण अभियुक्त के पक्ष में एक ऐसे अपराजेय अधिकार का निर्माण करता है जिसके आधार पर वह यह ईप्सा कर सकता है कि उसे जमानत पर छोड़ने का आदेश पारित किया जाए । यही कारण है कि टाडा की धारा 20(4) के साथ पठित संहिता की धारा 167(2) के परंतुक (क) के अधीन जमानत पर छोड़ने का आदेश साधारणत: "चूक के आधार पर पारित आदेश" कहा जाता है क्योंकि अभियुक्त को जमानत इसलिए मंजूर की जाती है कि अभियोजन पक्ष विहित अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करके चालान फाइल नहीं कर पाता । उक्त संशोधन के परिणामस्वरूप कोई अभियुक्त अपनी गिरफ्तारी की तारीख से 180 दिनों की समाप्ति के पश्चात् अपने विरुद्ध आरोपित अपराध की प्रकृति के निरपेक्ष उस दशा में जमानत का हकदार हो जाता है जब अभियोजन पक्ष अन्वेषण के पूर्ण होने पर उसके विरुद्ध चालान पेश नहीं कर पाता । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक के साथ पठित टाडा की धारा 20 की उपधारा (4) के खंड का संशोधन हो जाने के पश्चात् अभियुक्त के पक्ष में जमानत पर छोड़े जाने का अपराजेय अधिकार उस दशा में प्रोद्भूत हो जाता है जब पुलिस अन्वेषण को पूरा नहीं करती और अभियुक्त के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 में वर्णित विधि के अनुसार चालान पेश नहीं करती । ऐसी किसी दशा में, न्यायालय का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह उस अधिकतम अवधि की समाप्ति के पश्चात् जिसमें किसी अभियुक्त को अभिरक्षा में रखा जा सकता है उन मामलों के सिवाय जिनकों धारा 20(4) का खंड (खख) लागू होता है, पुलिस को इस आशय

की प्रार्थना को ठुकरा दे कि अभियुक्त के विरुद्ध और रिमांड दिया जाए । न्यायालय पर डाला गया एक अन्य उत्तरदायित्व यह भी है वह अभियुक्त को इस बात की इत्तिला दे कि उसके पास जमानत पर छोड़े जाने का अधिकार है और उसे उस संबंध में आवेदन करने में समर्थ बनाए । (हुसैन आरा खातून **बनाम** गृह सचिव, बिहार राज्य [1980] 2 उम. नि. प. 805 = (1980) 1 एस. सी. सी. 98 वाला मामला देखिए) यह विधिक स्थिति बहुत पटुता के साथ असलम बाबा लाल देसाई **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [1992] 4 उम. नि. प. 421 = (1992) 4 एस. सी. सी. 272 वाले मामले में वर्णित की गई है जिसमें न्या. अहमदी ने बहुमत वाला निर्णय सुनाते हुए रजनीकांता जीवनलाल पटेट **बनाम** आसूचना अधिकारी, स्वापक ओषधि नियंत्रण ब्यूरो, नई दिल्ली [1990] 3 उम. नि. प. 410 = (1989) 3 एस. सी. सी. 532 वाले मामले में अधिकथित विधि के प्रति सानुमोदन निर्देश किया जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारण किया गया :–

> "धारा 167(2) के परंतुक (क) के अधीन जमानत का अधिकार आत्यंतिक है । यह विधायी आदेश है न कि न्यायालय का विवेकाधिकार । यदि अन्वेषण अभिकरण, यथास्थिति, 90/60 दिन की समाप्ति से पूर्व आरोप पत्र फाइल करने में असफल रहता है तो अभिरक्षा में के अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए । परंतु इस प्रक्रम पर मामले के गुणागुण की परीक्षा नहीं की जाती। ऐसा कदापि नहीं किया जाना चाहिए । वास्तव में मजिस्ट्रेट को 90/60 दिन की नियत कालावधि से आगे किसी व्यक्ति को प्रति प्रेषित करने की किसी प्रकार की शक्ति नहीं है । उसे जमानत का आदेश पारित करना चाहिए और अपेक्षित जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए इससे अभियुक्त को संसूचित करना चाहिए ।"

21. इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यदि आरोप पत्र फाइल करने की अवधि एक बार समाप्त हो गई हो और या तो

अभिहित न्यायालय ने खंड (खख) के अधीन अवधि न बढ़ाई हो अथवा विस्तारित अवधि भी समाप्त हो गई हो तो अभियुक्त व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के साथ पठित टाडा की धारा 20 की उपधारा (4) के अधीन इस आशय का आवेदन करने का हकदार होगा कि उसकी जमानत मंजूर की जाए तथा अभिहित न्यायालय उसे जमानत पर छोड़ेगा बशर्ते कि अभियुक्त ने इस प्रकार छोड़े जाने की ईप्सा की हो और अपेक्षित जमानत प्रस्तुत की हो । हम अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की इस दलील से प्रभावित नहीं हैं कि उस अवधि के समाप्त हो जाने पर, जिसके लिए संहिता की धारा 167 के साथ पठित टाडा की धारा 20(4) के अधीन अन्वेषण का पूरा किया जाना अपेक्षित है, न्यायालय को चाहिए कि वह अभियुक्त को जमानत पर छोड़ दे चाहे अभियुक्त व्यक्ति ने जमानत प्रस्तुत करने की प्रस्थापना करते हुए कोई आवेदन न किया हो । हमारी राय में, यदि कोई अभियुक्त अन्वेषण/अभियोजन एजेंसी के व्यतिक्रम (चूक) के कारण यह चाहता है कि उसे जमानत पर छोड़ा जाए और यदि एक बार ऐसा आवेदन कर दिया जाता है तो न्यायालय लोक अभियोजक को नोटिस देगा, जो या तो यह दर्शित कर सके कि अभियोजन पक्ष ने अन्वेषण की पूर्णता के लिए अभिहित न्यायालय से खंड (खख) के अधीन अवधि के विस्तार का आदेश अभिप्राप्त कर लिया है या यह कि विहित अवधि के समाप्त होने से पहले अभिहित न्यायालय में चालान फाइल कर दिया गया है या यह भी कि विहित अवधि वस्तुत: समाप्त नहीं हुई है और इस प्रकार वह उक्त व्यतिक्रम के अभिकथित आधार पर जमानत की मंजूरी का विरोध कर सके । उक्त नोटिस के जारी किए जाने के परिणामस्वरूप इस संभावना का परिहार होगा कि कोई अभियुक्त या तो विमर्शित रूप से या अनवधानता से कतिपय तथ्यों को छिपाकर उक्त 'व्यतिक्रम' खंड के अधीन जमानत का आदेश अभिप्राप्त कर सके और कार्यवाहियों की बहुलता का भी परिहार होगा । अत: व्यतिक्रम के कारण जमानत की मंजूरी के आवेदन के संबंध में दोनों पक्षों की सुनवाई कर लेने की दशा में न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति होगी । इसी प्रकार, खंड (खख) के अधीन

अवधि के विस्तार की मंजूरी के लिए लोक अभियोजक द्वारा अभिहित न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने की दशा में, इससे पूर्व कि अवधि के विस्तार को मंजूरी दी जाए अभियुक्त को भी नोटिस देना आवश्यक होगा जिससे कि उसे अवधि के विस्तार का विरोध, स्वयं को उपलभ्य सभी विधिसम्मत और विधिक आधारों पर करने का अवसर मिल सके । यह सच है कि टाडा की धारा 20 की उपधारा (4) के न तो खंड (ख) में और न ही खंड (खख) में ऐसा कोई नोटिस दिए जाने का विनिर्दिष्ट उपबंध है फिर भी हमारी राय में अभियुक्त और अभियोजन पक्ष, दोनों के हित में तथा पक्षकारों के बीच पूरा न्याय करने के लिए भी उक्त उपबंधों में ऐसे किसी नोटिस के दिए जाने से संबंधित किसी उपबंध का पठन करना अनिवार्य है । यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षा है तथा यथास्थिति अभियुक्त अथवा लोक अभियोजक को नोटिस का दिया जाना कार्रवाई की उस निष्पक्षता के भी अनुरूप होगा जिस निष्पक्षता को न्यायालयों ने सदैव प्रोत्साहित किया है और उस पर जोर दिया है । इसके परिणामस्वरूप एक ओर तो अभियुक्त के और दूसरी ओर अभियोजन एजेंसी के माध्यम से जनसाधारण के हितों के बीच न्यायोचित संतुलन उत्पन्न होगा। अधिनियम की स्कीम में अभियुक्त अथवा लोक अभियोजक को ऐसा कोई नोटिस दिए जाने का कोई प्रतिषेध नहीं है और न ही किसी पक्षकार पर ऐसा कोई नोटिस दिए जाने से किसी प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । जैसा कि पहले ही अवेक्षित किया जा चुका है, हमें इस बात की पुनरावृत्ति करनी होगी कि टाडा की धारा 20 की उपधारा (4) के खंड (ख) के अधीन विहित अधिकतम अवधि के या खंड (खख) द्वारा यथा परिकल्पित विस्तारित अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करने और चालान फाइल करने में अभियोजन पक्ष के व्यतिक्रम के कारण किसी अभियुक्त की जमानत की मंजूरी के प्रति किया गया आक्षेप उन मामलों तक सीमित रहता है जिनमें या तो 'व्यतिक्रम' खंड का आश्रय लेने का कोई वास्तविक आधार उपलब्ध न हो या अन्वेषण पूरा करने की अवधि खंड (खख) के अधीन बढ़ा दी गई हो । न्यायालय के लिए

उस प्रक्रम में मामले की गुरुता, अपराध की गंभीरता या अपराधी का चरित्र, आदि जैसी कोई दशा, अभियोजन पक्ष के व्यतिक्रम के कारण टाडा की धारा 20 की उपधारा (4) के अधीन किसी अभियुक्त की जमानत मंजूर करने से इनकार करने के लिए महत्वपूर्ण नहीं हो सकती ।"

23. **संजय दत्त** बनाम **राज्य, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से**[1] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय में संविधान न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किए जाने वाले प्रश्नों में से एक प्रश्न व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने के अभियुक्त के अधिकार की प्रकृति को उपदर्शित करने वाली टाडा की धारा 20(4)(खख) के सही निर्वचन का था । गूढ़ अभिव्यक्ति "यदि पहले उपभोग नहीं किया गया है" पूर्वोक्त निर्णय के पैरा 48 में निम्नलिखित रूप से अंतर्विष्ट है :–

"48. हमें इस बाबत कोई संदेह नहीं है कि धारा 20(4)(खख) के कारण अभियुक्त के जमानत पर छोड़े जाने के अजेय अधिकार की प्रकृति से संबंधित हमारे समक्ष अवस्थिति इस विनिश्चय में उपदर्शित सिद्धांत के सही परिशीलन पर आधारित है । ऐसी स्थिति में अभियुक्त को प्रोद्भूत अजेय अधिकार चालान फाइल किए जाने से पूर्व ही प्रवर्तनीय है और यदि इससे लाभ नहीं उठाया गया है तो यह चालान फाइल किए जाने पर बना नहीं रहता है अथवा लागू नहीं रहता है । एक बार चालान फाइल किए जाने पर जमानत मंजूर किए जाने के प्रश्न पर चालान फाइल किए जाने के पश्चात् किसी अभियुक्त को जमानत मंजूर किए जाने से संबंधित उपबंधों के अधीन मामले के तथ्यों के प्रतिनिर्देश करते हुए विनिश्चय किया जाना चाहिए । चालान फाइल किए जाने के उपरांत अभियुक्त की अभिरक्षा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 द्वारा शासित न होकर विभिन्न उपबंधों द्वारा शासित होती है । यदि अभियुक्त को वह अधिकार प्रोद्भूत हुआ था किंतु इसे चालान फाइल किए जाने तक लागू नहीं किया गया, तब इसे इसके पश्चात् लागू किए जाने का

---

[1] [1995] 2 उम. नि. प. 285 = (1994) 5 एस. सी. सी. 410.

कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि यह चालान फाइल किए जाते ही निर्वापित हो जाता है क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 लागू नहीं रहती है । खंड न्यायपीठ ने यह भी उपदर्शित किया कि यदि अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने के लिए आवेदन किया जाता है और धारा 20(4)(खख) के परंतुक के अनुसार अन्वेषण पूर्ण करने के समय के विस्तारण की भी प्रार्थना की जाती है, तो इन दोनों पर एक साथ विचार किया जाना चाहिए । यह स्पष्ट है कि ऐसे किसी मामले में उस समय तक किसी प्रकार की जमानत मंजूर नहीं की जाती है जब तक कि अवधि के विस्तारण की प्रार्थना नामंजूर नहीं की जाती । संक्षेप में, ऐसी स्थिति में जमानत का मंजूर किया जाना समय विस्तारण की प्रार्थना, यदि ऐसी प्रार्थना की जाती है, के नामंजूर किए जाने के भी अध्यधीन है । यदि अभियुक्त, यथास्थिति, 180 दिन की अवधि या विस्तारित अवधि की समाप्ति पर इस उपबंध के अधीन जमानत के लिए आवेदन करता है, तो उसे तत्काल जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । इस प्रकार जमानत पर छोड़े गए अभियुक्त को गिरफ्तार करके दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुसार अभिरक्षा के सुपुर्द किया जा सकता है । संविधान न्यायपीठ के विनिश्चयों से यह स्थिर है कि प्रतिप्रेषण के विधिमान्य आदेश के अभाव में या अभियुक्त के निरोध के आधार पर बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट से संबंधित याचिका खारिज कर दी जाएगी । यदि नियम के घोषित किए जाने की तारीख को अभिरक्षा या निरोध किसी विधिमान्य आदेश पर आधारित है । (निरंजन सिंह नाथवान **बनाम** पंजाब राज्य [1952 एस. सी. आर. 395 = ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 106 = 1952 क्रिमिनल ला जर्नल 656], रामनारायण सिंह **बनाम** दिल्ली राज्य और अन्य {[1953 एस. सी. आर. 562 = ए. आई. आर. 1953 एस. सी. 277 = 1953 क्रिमिनल ला जर्नल 1113] और ए. के. गोपालन **बनाम** भारत सरकार [(1966) 2 एस. सी. आर. 427 = ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 816 = 1966 क्रिमिनल ला जर्नल 602] वाले मामले दृष्टव्य हैं ।}

* * * * *

53. उपर्युक्त विवेचन के परिणामस्वरूप हम विधि के तीनों प्रश्नों का उत्तर, जो हमारे विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट किए हैं, इस प्रकार देते हैं –

* * * * *

(2)(ख) जैसा कि हितेन्द्र विष्णु ठाकुर **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(1994) 4 एस. सी. सी. 602 = 1994 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1087 = (1994) 4 एस. सी. जे. टी. 255] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, अन्वेषण पूरा करने और अनुज्ञेय समय के भीतर चालान फाइल करने के व्यतिक्रम में टाडा अधिनियम की धारा 20(4)(खख) के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अनुसार अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने का 'अजेय अधिकार' ऐसा अधिकार है जो लागू होता है और व्यतिक्रम के समय से चालान फाइल किए जाने तक अभियुक्त द्वारा प्रवर्तनीय होता है और यह चालान फाइल किए जाने पर बना नहीं रहता है और न ही प्रवर्तित बना रहता है । यदि अभियुक्त, यथास्थिति, 180 दिन की अवधि या विस्तारित अवधि की समाप्ति पर इस उपबंध के अधीन जमानत के लिए आवेदन करता है, तो उसे तत्काल जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । इस प्रकार जमानत पर छोड़े गए अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार गिरफ्तार करके अभिरक्षा के सुपुर्द किया जा सकता है । अनुज्ञेय समय के भीतर चालान फाइल करने में व्यतिक्रम के होते हुए भी अभियुक्त का चालन फाइल किए जाने के पश्चात् जमानत पर छोड़े जाने का अधिकार चालान फाइल किए जाने के समय से ही इस प्रक्रम पर लागू होने वाले जमानत मंजूर किए जाने से संबंधित उपबंधों द्वारा शासित होता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

24. जब एक बार आरोप पत्र फाइल कर दिया गया है, तो क्या व्यतिक्रम जमानत मंजूर की जा सकती है, इस प्रश्न पर **उदय मोहनलाल आचार्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय में प्राधिकारवान रूप से विचार किया गया था । न्यायमूर्ति जी. बी. पटनायक के बहुमत के निर्णय में इस न्यायालय के विनिश्चयों और विशिष्ट रूप से **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में की पेचीदा अभिव्यक्ति "यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है" का पुनर्विलोकन किया गया था । इसके पश्चात् न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "13. ..... अत: निर्णायक प्रश्न जो विचार के लिए उद्भूत होता है, यह है कि "यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है" अभिव्यक्ति का सही अर्थ क्या है ? क्या इसका यह अर्थ है कि अभियुक्त जमानत के लिए आवेदन करे और जमानत पर छोड़े जाने के लिए अपनी रजामंदी दे या क्या इसका यह अर्थ है कि जमानत आदेश अवश्य पारित किया जाना चाहिए, अभियुक्त अवश्य जमानत दे और अपने को जमानत पर छुड़वाए ? हमारी सुविचारित राय में, यह अभिनिर्धारित करना विधायी आज्ञा के अधिक अनुरूप होगा कि यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि जिस क्षण अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने के लिए आवेदन फाइल करता है और जमानत के निबंधनों और शर्तों का पालन करने की प्रस्थापना करता है, उसने अवश्य अपने अजेय अधिकार का लाभ उठा लिया था । 'लाभ उठाया गया है' अभिव्यक्ति का निर्वचन अपेक्षित आवश्यक जमानत देने के पश्चात् वास्तव में जमानत पर छोड़े जाने का अर्थ लगाने के लिए करने से अभियुक्त के साथ अत्यधिक अन्याय कारित होगा और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक का प्रयोजन ही विफल हो जाएगा और इसके अतिरिक्त एक अवैद्य अभिरक्षा वैद्य बन जाएगी, क्योंकि अनुबंधित अवधि के पर्यवसान के पश्चात् मजिस्ट्रेट को प्रतिप्रेषण करने की आगे कोई अधिकारिता नहीं है और अभियुक्त की ऐसी

---

[1] (2001) 5 एस. सी. सी. 453.

अभिरक्षा प्रतिप्रेषण के किसी वैद्य आदेश के बिना हो जाती है । इसके अतिरिक्त, जब अभियुक्त जमानत के लिए आवेदन उसमें छोड़े जाने के अपने अधिकार को उपदर्शित करते हुए इसलिए फाइल करता है चूंकि विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई चालान फाइल नहीं किया गया था, तब मजिस्ट्रेट के पास कोई विवेकाधिकार नहीं रह जाता है और उससे इस बात का पता लगाने की अपेक्षा की जाती है कि क्या कानून के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि व्यतीत हो गई है या नहीं, और क्या कोई चालान फाइल किया गया है या नहीं । यदि 'लाभ उठाया गया है' अभिव्यक्ति का निर्वचन यह अर्थ लगाने के लिए किया जाए कि अभियुक्त को अवश्य वास्तविक रूप में जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए, तब किसी प्रस्तुत मामले में जहां मजिस्ट्रेट धारा 167 में अनुबंधित अधिकतम अवधि का पर्यवसान होते हुए भी आदेश पारित करने से अवैध रूप से इनकार कर देता है और अभी कोई चालान फाइल नहीं किया गया हो, तब अभियुक्त केवल उच्चतर न्यायालय में समावेदन फाइल कर सकता है और जब उच्चतर न्यायालय में मामला विचार के लिए लंबित हो, यदि अभियोजन पक्ष आरोप पत्र फाइल कर देता है तब भी अभियुक्त को प्रोद्भूत तथाकथित अधिकार अन्वेषण अभिकरण की निष्क्रियता के कारण विफल हो जाएगा । चूंकि विधानमंडल ने अपना अधिदेश दिया है, इसलिए इस अधिकार को प्रवर्तित करने के लिए न्यायालय का आबद्धकारी कर्तव्य होगा और 'यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है' अभिव्यक्ति का निर्वचन इस रीति में करके जिससे कि अभियोजन पक्ष द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा सकता है, इस अधिकार से इनकार करना न्याय के हित में नहीं होगा । मध्य प्रदेश राज्य **बनाम** रुस्तम [1995 सप्ली. (3) एस. एस. सी. 221 = 1995 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 830] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ का उच्च न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर करने के आदेश को इस निष्कर्ष के आधार पर अपास्त करने का विनिश्चय कि आदेश की तारीख को अभियोजन पक्ष ने पहले ही पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी और इसलिए यह अधिकार निर्वापित हो गया था, हमारी सुविचारित राय

में, संजय दत्त [(1994) 5 एस. सी. सी. 410 = 1994 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1435] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा प्रयुक्त 'यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है' अभिव्यक्ति की विधि में सही स्थिति को अभिव्यक्त नहीं करता है । ....पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में, हमारी यह सुविचारित राय है कि यदि अभियुक्त ने अनुबंधित अवधि के पर्यवसान के पश्चात् यह अभिकथन करते हुए आवेदन फाइल किया है कि कोई चालान फाइल नहीं किया गया है और वह जमानत देने के लिए तैयार है, जिसके लिए आदेश किया गया है और तथ्य के रूप में यह पाया जाता है कि अभियुक्त की गिरफ्तारी की तारीख से विहित अवधि के भीतर कोई चालान फाइल नहीं किया गया था, तो यह अवश्य अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उसने संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक में उपबंधित विधायी अध्यादेश से उत्पन्न होने वाले अपने अधिकार का लाभ उठा लिया था । हमारे मत में, ऐसे निर्वचन से उस प्रयोजन और उद्देश्य की पूर्ति हो जाएगी जिसके लिए प्रश्नगत उपबंध को कानून की पुस्तक में लाया गया था । अत: ऐसी स्थिति में, यदि जमानत पर छोड़े जाने के आदेश पर विचार करने के लिए आवेदन कुछ समय के पश्चात् न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध होता है या यदि मजिस्ट्रेट गलत रूप से आवेदन से इनकार कर देता है और अभियुक्त अपने अजेय अधिकार के प्रवर्तन में जमानत पर छोड़े जाने का औपचारिक आदेश लेने के लिए उच्चतर न्यायालय में समावेदन करता है, तब उस प्रक्रम पर चालान फाइल किए जाने से अभियुक्त का अधिकार छीना नहीं जाएगा । दैहिक स्वाधीनता भारतीय संविधान के पोषित उद्देश्यों में से एक है और इससे केवल विधि के अनुसार और इसके उपबंधों के अनुरूप वंचित किया जा सकता है, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन अनुबंधित है । जब विधि में यह उपबंधित है कि मजिस्ट्रेट अभियुक्त को अभिरक्षा में धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक में यथा उपदर्शित अधिकतम अवधि तक निरुद्ध करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है, तो अन्वेषक अभिकरण द्वारा कोई चालान फाइल किए बिना इस अवधि से परे और आगे निरुद्ध रखना एक चालबाजी

होगी और वह विधि के अनुसार तथा दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुरूप नहीं होगा और इसलिए इससे संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण हो सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता में, धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक में उपदर्शित अवधि के पर्यवसान के पश्चात् इसके स्पष्टीकरण 1 में उपदर्शित आकस्मिकता के सिवाय अर्थात् यदि अभियुक्त जमानत प्रस्तुत नहीं करता है, अभियुक्त के निरोध को प्राधिकृत करने के लिए कोई उपबंध नहीं है । ..... किंतु जैसे ही अभियुक्त आवेदन फाइल कर देता है और न्यायालय के समुचित आदेशों द्वारा छोड़े जाने के लिए आवेदन में जमानत देने की प्रस्थापना उपदर्शित करता है तब जमानत पर छोडे जाने के अभियुक्त के अधिकार को मजिस्ट्रेट की इस संभावना के आधार पर विफल नहीं किया जा सकता है कि यह उपलब्ध नहीं है और यह कि मामले में समावेदन नहीं किया गया था या मजिस्ट्रेट ने आदेश पारित करने से गलत रूप से इनकार किया था और मामला उच्चतर न्यायालय में ले जाया गया है और इसी अंतराल में चालान फाइल कर दिया गया है । यही केवल एक तरीका है जब विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर चालान फाइल करने में अभियोजन पक्ष के असफल रहने पर अभियुक्त के तथाकथित अजेय अधिकार और अभियोजन अभिकरण की ओर से की गई निष्क्रियता के कारण अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने से विधिपूर्वक रोकते हुए बृहत्त समाज के हित के बीच संतुलन बनाया जा सकता है । पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में, हम अपने निष्कर्ष निम्नलिखित रूप में अभिलिखित करते हैं –

* * * * *

3. यथास्थिति, 90 दिन या 60 दिन की उक्त अवधि का पर्यवसान होने पर अन्वेषण अभिकरण द्वारा विहित अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करने में व्यतिक्रम करने के कारण अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने के लिए उसके पक्ष में एक अजेय अधिकारी प्रोद्भूत होता है और अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है, यदि वह मजिस्ट्रेट

द्वारा दिए गए निदेश के अनुसार जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत प्रस्तुत कर देता है ।

* * * * *

6. संजय दत्त [(1994) 5 एस. सी. सी. 410 = 1994 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1435] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रयुक्त 'यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है' अभिव्यक्ति को यह अर्थ लगाने के लिए समझा जाना चाहिए कि जब अभियुक्त आवेदन फाइल करता है और निदेश दिए जाने पर जमानत देने के लिए तैयार है । दूसरे शब्दों में, धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक के पैरा (क) में विनिर्दिष्ट अवधि का पर्यवसान होने पर यदि अभियुक्त जमानत के लिए आवेदन फाइल करता है और निदेश दिए जाने पर जमानत देने की भी प्रस्थापना करता है, तब यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने अपने अजेय अधिकार का लाभ उठा लिया था, भले ही न्यायालय ने उक्त आवेदन पर विचार न किया हो और जमानत के निबंधनों और शर्तों को उपदर्शित न किया हो और अभियुक्त ने इसे प्रस्तुत न किया हो ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

न्यायमूर्ति बी. एन. अग्रवाल ने यह अभिनिर्धारित करते हुए विसम्मति व्यक्त की :-

"29. मेरे विद्वान् भ्राता ने निष्कर्ष 6 पर पहुंचने के लिए संजय दत्त [(1994) 5 एस. सी. सी. 410 = 1994 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1433] वाले मामले में के निर्णय में निर्दिष्ट 'यदि पहले लाभ नहीं उठाया है' अभिव्यक्ति को निर्दिष्ट किया है । मेरे अनुसार, 'लाभ उठाया है' अभिव्यक्ति का अर्थ मात्र जमानत के लिए आवेदन फाइल करना नहीं है जिसमें जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने की रजामंदी अभिव्यक्त की गई हो । तब क्या होगा यदि 61वें दिन इस आधार पर जमानत पर छोड़े जाने के लिए आवेदन फाइल किया जाता है कि 60वें दिन चालान फाइल नहीं किया गया

था और 61वें दिन उस समय चालान भी फाइल कर दिया जाता है जब मजिस्ट्रेट को चालान के साथ-साथ जमानत के लिए आवेदन पर अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए कहा जाता है ? ऊपर निर्दिष्ट किए गए कई विनिश्चयों और संहिता की धारा 167(2) के स्पष्टीकरण 1 के साथ पठित परंतुक के खंड (क)(ii) द्वारा विहित की गई अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए, चूंकि कोई जमानत बंधपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था इसलिए जमानत के लिए ऐसे आवेदन को खारिज किया जाना चाहिए था क्योंकि धारा 167(2) के परंतुक का प्रक्रम समाप्त हो जाता है, क्योंकि ऐसा अधिकार उसी क्षण निर्वापित हो जाता है जब चालान फाइल कर दिया जाता है ।

30. इस पृष्ठभूमि में, 'लाभ उठाया गया है' अभिव्यक्ति का अर्थ मात्र जमानत के लिए आवेदन फाइल करना नहीं है जिसमें जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने की रजामंदी अभिव्यक्त की गई हो, अपितु वास्तव में जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने का प्रक्रम अवश्य पहुंचना चाहिए । यदि इससे पूर्व चालान फाइल कर दिय जाता है, तब इस अधिकार को, चाहे यह कितना ही मूल्यवान या अजेय हो, चालान फाइल करने के पश्चात् प्रवर्तित करने का कोई प्रश्न नहीं है क्योंकि उसके पश्चात् व्यतिक्रम खंड के अधीन अधिकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता है ।"

25. तथापि, इस मामले में बहुमत के निर्णय द्वारा अधिकथित विधि का **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में अनुसरण नहीं किया गया था । विधि में इस छुटपुट अड़चन को इसके पश्चात् **भारत संघ** बनाम **निराला यादव**[2] वाले मामले में के निर्णय द्वारा दूर किया गया था, जिसमें इस विषय पर संपूर्ण निर्णयज विधि पर व्यापक रूप से चर्चा की गई थी । इस निर्णय में, इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस विषय पर **उदय मोहनलाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत के निर्णय सहित सभी सुसंगत नजीरों को निर्दिष्ट किया और फिर यह निष्कर्ष निकाला गया :–

---

[1] (2011) 10 एस. सी. सी. 445.

[2] (2014) 9 एस. सी. सी. 457.

"44. इस प्रक्रम पर, इस बात की छानबीन करना नितांत रूप से आवश्यक है कि उदय मोहनलाल आचार्य [(2001) 5 एस. सी. सी. 453 = 2001 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 760] वाले मामले में उल्लिखित स्पष्ट सिद्धांत क्या थे और प्रज्ञा सिंह ठाकुर [(2011) 10 एस. सी. सी. 445 = (2012) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 311] वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इसको कैसे समझा था । हमने पहले ही उदय मोहनलाल आचार्य [(2001) 5 एस. सी. सी. 453 = 2001 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 760] वाले मामले में के पैराओं को और प्रज्ञा सिंह ठाकुर [(2011) 10 एस. सी. सी. 445 = (2012) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 311] वाले मामले में के सुसंगत पैराओं को विस्तारपूर्वक उद्धृत किया है । प्रज्ञा सिंह ठाकुर वाले मामले में उसके द्वारा जो सिद्धांत अधिकथित किया गया था उस पर बल देने के लिए रुस्तम [(1995) 3 सप्ली. एस. सी. सी. 221 = 1995 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 830] वाले मामले का समर्थन लिया गया था, यद्यपि उदय मोहनलाल आचार्य वाले मामले में उक्त विनिश्चय को विधि की सही स्थिति का उल्लेख न करने वाला अभिनिर्धारित किया गया था और इसलिए इसका अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए था । खंड न्यायपीठ ने पैरा 56 में, जिसे इसमें ऊपर उद्धृत किया गया है, पैरा 13 और उदय मोहनलाल आचार्य वाले मामले के निष्कर्षों को निर्दिष्ट किया था । हमने पहले ही पैरा 13 से और निष्कर्षों को उद्धृत किया है ।

45. प्रज्ञा सिंह ठाकुर [(2011) 10 एस. सी. सी. 445 = (2012) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 311] वाले मामले के पैरा 54 और 58 में अभिव्यक्त की गई राय, जिस पर हमने बल दिया है, जैसा कि हमें प्रतीत होता है, उदय मोहनलाल आचार्य [(2001) 5 एस. सी. सी. 453 = 2001 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 760] वाले मामले में उल्लिखित उन सिद्धांतों के विपरीत है, जिनका हसन अली खान [(2011) 10 एस. सी. सी. 235 = (2012) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 256] वाले मामले और सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी [(2012) 12 एस. सी. सी. 1 = (2013) 2 एस. सी. सी.

(क्रिमिनल) 488] वाले मामले में अनुसरण किया गया था । सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी [(2012) 12 एस. सी. सी. 1 = (2013) 2 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 488] वाले मामले में विनिश्चय एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया था । हम यह कहना चाहेंगे कि यद्यपि प्रज्ञा सिंह ठाकुर [(2011) 10 एस. सी. सी. 445 = (2012) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 311] वाले मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने उदय मोहनलाल आचार्य [(2001) 5 एस. सी. सी. 453 = (2001) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 760] वाले मामले को निर्दिष्ट किया था । किंतु इस सिद्धांत का उल्लेख किया था कि यदि जमानत के लिए आवेदन इस आधार पर फाइल किया जाता है कि 90 दिनों के भीतर आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया था, किंतु इस पर विचार करने से पूर्व और जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व यदि आरोप पत्र फाइल कर दिया जाता है तो जमानत पर छोड़े जाने का उक्त अधिकार समाप्त हो जाता है । यह राय बृहत्तर न्यायपीठ के पूर्ववर्ती विनिश्चयों के विपरीत है और मुश्ताक अहमद मोहम्मद इशाक [(2009) 7 एस. सी. सी. 480 = (2009) 3 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 449] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के पश्चात्वर्ती विनिश्चय के भी विपरीत है । हमारा यह विचार है कि चूंकि दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 'इस पर विचार करने से पूर्व और जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व' शब्दों का प्रयोग किया था इसलिए उक्त सिद्धांत बृहत्तर न्यायपीठों द्वारा दिए गए विनिश्चयों में उल्लिखित प्रतिपादना के विपरीत है ।

46. इस प्रक्रम पर, उदय मोहनलाल आचार्य [(2001) 5 एस. सी. सी. 453 = (2001) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 760] वाले मामले में न्यायमूर्ति बी. एन. अग्रवाल द्वारा व्यक्त की गई विसम्मत राय को निर्दिष्ट करना समुचित होगा । विद्वान् न्यायाधीश ने जहां तक 'यदि पहले लाभ नहीं उठाया है' अभिव्यक्ति के निर्वचन का संबंध है, यह मत व्यक्त करते हुए बहुमत से विसम्मति व्यक्त की थी :–

'29. मेरे विद्वान् भ्राता ने निष्कर्ष 6 पर पहुंचने के लिए

संजय दत्त [(1994) 5 एस. सी. सी. 410 = (1994) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1433] वाले मामले में के निर्णय में निर्दिष्ट 'यदि पहले लाभ नहीं उठाया है' अभिव्यक्ति को निर्दिष्ट किया है । मेरे अनुसार, 'लाभ उठाया है' अभिव्यक्ति का अर्थ मात्र जमानत के लिए आवेदन फाइल करना नहीं है जिसमें जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने की रजामंदी अभिव्यक्त की गई हो । तब क्या होगा यदि 61वें दिन इस आधार पर जमानत पर छोड़े जाने के लिए आवेदन फाइल किया जाता है कि 60वें दिन चालान फाइल नहीं किया गया था और 61वें दिन उस समय चालान भी फाइल कर दिया जाता है जब मजिस्ट्रेट को चालान के साथ-साथ जमानत के लिए आवेदन पर अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए कहा जाता है ? ऊपर निर्दिष्ट किए गए कई विनिश्चयों और संहिता की धारा 167(2) के स्पष्टीकरण 1 के साथ पठित परंतुक के खंड (क)(ii) द्वारा विहित की गई अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए, चूंकि कोई जमानत बंधपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था इसलिए जमानत के लिए ऐसे आवेदन को खारिज किया जाना चाहिए था क्योंकि धारा 167(2) के परंतुक का प्रक्रम समाप्त हो जाता है, क्योंकि ऐसा अधिकार उसी क्षण निर्वापित हो जाता है जब चालान फाइल कर दिया जाता है ।

30. इस पृष्ठभूमि में, 'लाभ उठाया गया है' अभिव्यक्ति का अर्थ मात्र जमानत के लिए आवेदन फाइल करना नहीं है जिसमें जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने की रजामंदी अभिव्यक्त की गई हो, अपितु वास्तव में जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने का प्रक्रम अवश्य पहुंचना चाहिए । यदि इससे पूर्व चालान फाइल कर दिया जाता है, तब इस अधिकार को, चाहे यह कितना ही मूल्यवान या अजेय हो, चालान फाइल करने के पश्चात् प्रवर्तित करने का कोई प्रश्न नहीं है क्योंकि उसके पश्चात् व्यतिक्रम खंड के अधीन अधिकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता है ।'

पूर्वोक्त दोनों पैराओं का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर हमारा यह विचार है कि प्रज्ञा सिंह ठाकुर [(2011) 10 एस. सी.

सी. 445 = (2012) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 311] वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने कुछ इसी प्रकार के मामले में ऐसा ही मत व्यक्त किया था । जब तक बहुमत की राय अभिभावी है तब तक यह एक आबद्धकारी पूर्व-निर्णय है । इसके अतिरिक्त, सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी [(2012) 12 एस. सी. सी. 1 = (2013) 2 एस. सी. सी. (क्रि.) 488] वाले मामले में एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा इसका अनुसरण किया गया था । सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी वाले मामले में उल्लिखित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, जो उदय मोहनलाल आचार्य [(2001) 5 एस. सी. सी. 453 = (2001) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 760] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय पर आधारित है, हम यह निष्कर्ष निकालने के लिए और अभिनिर्धारित करने के लिए आबद्ध हैं कि प्रज्ञा सिंह ठाकुर वाले मामले के पैरा 54 और 58 में अधिकथित सिद्धांत (जिस पर हमारे द्वारा बल दिया गया है : ऊपर पैरा 42 और 43 देखें) विधि के सही सिद्धांत का उल्लेख नहीं करता है । स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि बृहत्तर न्यायपीठ के पूर्ववर्ती विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए इसे सही विधि नहीं माना जा सकता है । हमारे मत का समर्थन भारत संघ **बनाम** अर्विवा इंडस्ट्रीज इंडिया लि. [(2014) 3 एस. सी. सी. 159] वाले मामले में के विनिश्चय से होता है ।"

26. **सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार**[1] वाले मामले में भी इस न्यायालय के समक्ष विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 43-घ, विशिष्ट रूप से इसका परंतुक विचार करने के लिए आया था, जिसमें 90 दिनों से परे अन्वेषण के लिए अवधि को 180 दिनों की अवधि तक विस्तारित किया गया है । व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन तारीख 17 जुलाई, 2012 को किया गया था, क्योंकि अपीलार्थी की अभिरक्षा के 90 दिनों की अवधि के भीतर आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया था । पूर्वोक्त मामले में आरोप पत्र उसके पश्चात् तारीख 31 जुलाई, 2012 को

---

[1] (2012) 12 एस. सी. सी. 1.

फाइल किया गया था । इस तथ्य के बावजूद कि इस आवेदन पर आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व सुनवाई के लिए कार्रवाई नहीं की गई थी, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन आरोप पत्र फाइल किए जाने से पूर्व फाइल किया गया था, इसलिए पहले कथित "अजेय अधिकार" प्रवर्तित हो गया था, जिसके परिणामस्वरूप व्यतिक्रम जमानत मंजूर की जानी चाहिए थी । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "25. संबंधित पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों, विधि के सुसंगत उपबंधों और उद्धृत किए गए विनिश्चयों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात्, राज्य की ओर से विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री रावल द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं । इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि तारीख 17 जुलाई, 2012 को, जब अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा 2012 की सीआर सं. 86 को मंजूर किया गया था और अपीलार्थी की अभिरक्षा को अवैध ठहराया गया था तथा अपीलार्थी की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन कानूनी जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन किया गया था जिसे सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया था । मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट ने आवेदन पर सुनवाई करने की बजाय इसे अगले दिन तक के लिए स्थगित कर दिया था जब लोक अभियोजक ने अभिरक्षा और अन्वेषण की अवधि का विस्तार करने के लिए आवेदन फाइल किया था और तारीख 20 जुलाई, 2012 को अन्वेषण के समय में और अपीलार्थी की अभिरक्षा को 90 दिनों की और आगे अवधि के लिए तारीख 2 जून, 2012 से भूतलक्षी प्रभाव से विस्तार किया था । न केवल मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के भूतलक्षी प्रभाव का आदेश अमान्य है, अपितु इससे उस कानूनी अधिकार को भी विफल नहीं किया जा सकता था जो अपीलार्थी को उस तारीख से 90 दिनों के पर्यवसान पर प्रोद्भूत हुआ था जब अपीलार्थी को अभिरक्षा में लिया गया था । ऐसा अधिकार, जैसा कि संजय दत्त [(1994) 5 एस. सी. सी. 410 = (1994) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1435] वाले मामले में और

विद्वान् अपर महासालिसिटर द्वारा उद्धृत किए गए अन्य मामलों में इस न्यायालय द्वारा टिप्पणी की गई है, केवल तब निर्वापित हो सकता है जब एक बार मामले में आरोप पत्र फाइल कर दिया गया हो और कानून जमानत मंजूर करने के लिए इससे पूर्व आवेदन नहीं किया गया हो । यह भली-भांति स्थिर है कि यदि अभियुक्त आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व कानूनी जमानत मंजूर करने के लिए अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करता है, तो वह तब अपने इस फायदे को खो देता है जब एक बार ऐसा आरोप पत्र फाइल कर दिया जाता है और इसके पश्चात् केवल नियमित जमानत के लिए आवेदन कर सकता है ।

26. तथापि, इस मामले में परिस्थितियां भिन्न हैं क्योंकि अपीलार्थी ने कानूनी जमानत के अपने अधिकार का प्रयोग उसी दिन ही किया था जिस दिन उसकी अभिरक्षा को अवैध ठहराया गया था और मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा इस आवेदन को अभियोजन पक्ष द्वारा अन्वेषण पूरा करने के लिए समय का विस्तार करने हेतु फाइल किए गए आवेदन पर कार्यवाही करने तक अविनिश्चित छोड़ दिया गया था और तदुपरांत आदेश पारित किए गए थे ।

27. हम मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का समर्थन करने में असमर्थ हैं, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है और हमारा यह मत है कि अपीलार्थी ने कानूनी जमानत मंजूर करने का अधिकार तारीख 17 जुलाई, 2012 को अर्जित कर लिया था जब अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा उसकी अभिरक्षा को अवैध ठहराया गया था चूंकि कानूनी जमानत के लिए उसका आवेदन उस समय लंबित था जब अभियोजन पक्ष द्वारा अन्वेषण जारी रखने के लिए समय का विस्तार करने हेतु आवेदन फाइल किया गया था । हमारे मत में, कानूनी जमानत मंजूर करने का अपीलार्थी का अधिकार बाद में फाइल किए गए आवेदन से अप्रभावित रहा था और मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट तथा उच्च न्यायालय दोनों ने अन्यथा अभिनिर्धारित करके गलती की थी ।"

27. **राकेश कुमार पॉल** बनाम **असम राज्य**[1] के रूप में संप्रकाशित एक बिल्कुल हाल ही के निर्णय में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया और एक कदम आगे निकल गया । न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर और न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता के बहुमत निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यहां तक कि व्यतिक्रम जमानत मंजूर करने के लिए मौखिक आवेदन भी पर्याप्त होगा और जब तक ऐसा आवेदन पुलिस द्वारा आरोप पत्र फाइल किए जाने से पूर्व किया गया है, व्यतिक्रम जमानत अवश्य मंजूर की जानी चाहिए । न्यायमूर्ति लोकुर के निर्णय में निम्नलिखित उल्लेख किया गया था :–

> "37. भारत संघ **बनाम** निराला यादव [(2014) 9 एस. सी. सी. 457 = (2014) 5 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 212] वाले मामले में इस न्यायालय के पास इस विषय पर संपूर्ण निर्णयज विधि का पुनर्विलोकन करने का अवसर आया था । उस विनिश्चय में, उदय मोहनलाल आचार्य **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(2001) 5 एस. सी. सी. 453 = (2001) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 760] वाले मामले और इस विनिश्चय में निकाले गए निष्कर्षों के प्रति निर्देश किया गया था । हमारा सरोकार निष्कर्ष (3) से है जो निम्नलिखित है :–
>
> > '13(3) यथास्थिति, 90 दिन या 60 दिन की उक्त अवधि का पर्यवसान होने पर अन्वेषण अभिकरण द्वारा विहित अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करने में व्यतिक्रम करने के कारण अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने के लिए उसके पक्ष में एक अजेय अधिकारी प्रोद्भूत होता है और अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है, यदि वह मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गए निदेश के अनुसार जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत प्रस्तुत कर देता है ।'
>
> 38. इस न्यायालय ने संजय दत्त **बनाम** राज्य [(1994) 5 एस. सी. सी. 410 = (1994) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1433] वाले मामले में किए गए विनिश्चय पर भी विचार किया गया था

---

[1] (2017) 15 एस. सी. सी. 67.

और यह उल्लेख किया कि संविधान न्यायपीठ द्वारा अधिकथित सिद्धांत इस आशय का है कि यदि आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया है और 'व्यतिक्रम जमानत के लिए अधिकार' अजेय अधिकार की प्रास्थिति में पहुंच गया है, तो अभियोजन पक्ष द्वारा किसी बहाने से इसे विफल नहीं किया जा सकता है । अभियुक्त अपनी स्वाधीनता का लाभ यह कथन करते हुए आवेदन फाइल करके उठा सकता है कि आरोप पत्र या चालान फाइल करने के लिए अवधि का पर्यवसान हो गया है और आरोप पत्र या चालान अभी तक फाइल नहीं किया गया है और इसलिए उसके पक्ष में अजेय अधिकार प्रोद्भूत हो गया है और अभियुक्त जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए भी तैयार है ।

39. इस न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि इस अजेय अधिकार को अभियोजन पक्ष द्वारा विफल करने की संभाव्यता के अतिरिक्त ऐसे अवसर भी आते हैं जब न्यायालय भी इस अजेय अधिकार को विफल कर देता है । मोहम्मद इकबाल मदर शेख **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(1996) 1 एस. सी. सी. 722 = (1996) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 202] वाले मामले के प्रति निर्देश किया गया था, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि कुछ न्यायालय 'व्यतिक्रम जमानत' के लिए आवेदन को कुछ दिनों के लिए लंबित रखते हैं जिससे कि इस बीच आरोप पत्र फाइल कर दिया जाए । जबकि अभियोजन पक्ष तथा कुछ न्यायालयों दोनों की ओर से अपनाई जाने वाली ऐसी परिपाटी को बहुत ही मजबूती और जोरदार रूप से हतोत्साहित किया जाना चाहिए, हम यह दोहराते हैं कि जब न्यायालय में आरोप पत्र या चालान फाइल करने के लिए कानूनी अवधि का पर्यवसान हो जाता है, तो मध्यवर्ती काल के दौरान 'व्यतिक्रम जमानत' के लिए अभियुक्त के अजेय अधिकार को विफल करने के लिए किसी चालबाजी का आश्रय नहीं लिया जाना चाहिए ।

व्यतिक्रम जमानत अभिप्राप्त करने के लिए प्रक्रिया

40. प्रस्तुत मामले में, राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल

द्वारा यह भी दलील दी गई थी कि याची ने 'व्यतिक्रम जमानत' के लिए तारीख 4 जनवरी, 2017 को या पश्चात् तारीख 24 जनवरी, 2017 तक आवेदन नहीं किया था, जिस तारीख को आरोप पत्र फाइल करने पर उसका अजेय अधिकार निर्वापित हो गया था । वास्तव में, यह बात सही है चूंकि याची ने गुवाहाटी उच्च न्यायालय में नियमित जमानत के लिए तारीख 11 जनवरी, 2017 को आवेदन किया था और उसने 'व्यतिक्रम जमानत' मंजूर करने के लिए कोई विनिर्दिष्ट आवेदन नहीं किया था । तथापि, अभियुक्त द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2017 को फाइल किए गए नियमित जमानत के लिए आवेदन में यह उल्लेख किया था कि आरोप पत्र फाइल करने के लिए कानूनी अवधि का पर्यवसान हो गया था और वास्तव में शायद कोई आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया था । किसी भी स्थिति में, याची की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा उच्च न्यायालय में इस मुद्दे पर बहस की गई थी और इस पर विचार किया गया था किंतु उच्च न्यायालय द्वारा इसे स्वीकार नहीं किया गया था । उच्च न्यायालय ने इस दलील को कायम न रखने के आधार पर मंजूर नहीं किया था अपितु गुणागुण के आधार पर नामंजूर किया था । इसलिए ऐसा नहीं है कि मानो याची ने उच्च न्यायालय के समक्ष व्यतिक्रम जमानत के लिए कोई आवेदन नहीं किया था – ऐसा आवेदन निश्चित रूप से किया गया था (चाहे लिखित में नहीं) अपितु मौखिक रूप से ही सही । हमारी राय में, दैहिक स्वाधीनता के मामलों में हम अति तकनीकीवादी नहीं हो सकते हैं और होना नहीं चाहिए तथा दैहिक स्वाधीनता के पक्ष में झुकाव होना चाहिए । परिणामतः, अभियुक्त ने 'व्यतिक्रम जमानत' के लिए लिखित आवेदन किया हो या 'व्यतिक्रम जमानत' के लिए मौखिक आवेदन किया हो, यह बात मायने नहीं रखती है । संबंधित न्यायालय को ऐसे आवेदन पर कानूनी अपेक्षाओं, अर्थात् क्या आरोप पत्र या चालान फाइल करने के लिए कानूनी अवधि का पर्यवसान हो गया है, क्या आरोप पत्र या चालान फाइल किया गया है और क्या अभियुक्त जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत प्रस्तुत की है, पर विचार करते हुए अवश्य विचार करना चाहिए ।

41. हमने यह दृष्टिकोण इस बात को ध्यान में रखते हुए अपनाया है कि दैहिक स्वाधीनता और संविधान के अनुच्छेद 21 के मामलों में, सदैव औपचारिकतावादी या तकनीकीवादी होना बुद्धिमानी नहीं है । इस न्यायालय और अन्य सांविधानिक न्यायालयों के दैहिक स्वाधीनता से संबंधित विधिशास्त्र का इतिहास, जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट और अन्य रिटें भी सम्मिलित हैं, मुख्य न्यायाधीश या न्यायालय को संबोधित पत्र के आधार पर भी ग्रहण किए जाने का रहा है ।

xxx xxx xxx

याची पर विधि का लागू होना

45. तारीख 11 जनवरी, 2017 को जब उच्च न्यायालय ने याची द्वारा फाइल किए गए जमानत के आवेदन को खारिज कर दिया था, तब उसे 'व्यतिक्रम जमानत' मंजूर करने के लिए अजेय अधिकार था चूंकि आरोप पत्र फाइल करने के लिए 60 दिनों की कानूनी अवधि का पर्यवसान हो गया था, उसके विरुद्ध कोई आरोप पत्र या चालान फाइल नहीं किया गया था (यह केवल 24-1-2017 को फाइल किया गया था) और याची ने मौखिक रूप से 'व्यतिक्रम जमानत' के लिए आवेदन किया था । इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय के लिए तारीख 11 जनवरी, 2017 को एकमात्र प्रक्रिया यह थी कि याची से यह पूछताछ करे कि क्या वह जमानत देने के लिए तैयार है और यदि वह तैयार है तो युक्तियुक्त शर्तों के आधार पर उसे 'व्यतिक्रम जमानत' मंजूर करे । दुर्भाग्यवश, उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रक्रिया की पूर्ण रूप से अनदेखी की गई थी ।

46. यह दलील दी गई कि आज ही याची के विरुद्ध एक आरोप पत्र फाइल किया गया है, इसलिए वह 'व्यतिक्रम जमानत' का हकदार नहीं है अपितु उसे अवश्य नियमित जमानत के लिए आवेदन करना चाहिए – 'व्यतिक्रम जमानत' का अध्याय अब समाप्त हो गया है । हम इस बात से सहमत नहीं हैं और इसका मात्र कारण यह है कि हमारा सरोकार तारीख 4 जनवरी, 2017 और 24 जनवरी, 2017 के बीच के उस मध्यवर्ती काल का है जब

कोई आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया था, जिस अवधि के दौरान उसने 'व्यतिक्रम जमानत' के अपने अजेय अधिकार का लाभ उठाया था । यदि याची ने 'व्यतिक्रम जमानत' के लिए इस मध्यवर्ती काल के दौरान किसी भी कारण से आवेदन नहीं किया होता तो यह पूरी तरह से एक अन्य विषय रहा होता । ऐसी स्थिति हो सकती है (तथापि, विरले ही) जहां अभियुक्त शायद अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए जमानत देकर बाहर आने के लिए तैयार न हो, चूंकि हो सकता है उसे (पुरुष/स्त्री) सुधार गृह के बाहर से किसी धमकी का सामना करना पड़ रहा हो या किसी अन्य कारण से । किंतु ऐसी स्थिति में, अभियुक्त व्यतिक्रम जमानत के लिए इस अजेय अधिकार का स्वेच्छापूर्वक त्याग करता है और इस अधिकार का समपहरण करने पर अभियुक्त आरोप पत्र या चालान फाइल किए जाने के पश्चात् इस अजेय अधिकार को पुनर्जीवित करने का दावा नहीं कर सकता है । किंतु जहां तक याची का संबंध है, ऐसा मामला नहीं है, चूंकि उसने तारीख 4 जनवरी, 2017 और 24 जनवरी, 2017 के बीच के मध्यवर्ती काल के दौरान 'व्यतिक्रम जमानत' के लिए अपने अजेय अधिकार का त्याग नहीं किया था, जैसा कि तारीख 11 जनवरी, 2017 को किए गए उच्च न्यायालय के विनिश्चय से स्पष्ट है । इसके विपरीत, उसने 'व्यतिक्रम जमानत' के अपने अधिकार का लाभ उठाया था, जिसे तारीख 11 जनवरी, 2017 को विफल नहीं किया जा सकता था और जिसे हम आज अभिस्वीकृत और प्रवर्तित करने के लिए आबद्ध हैं ।

47. परिणामत:, हमारी यह राय है कि याची ने 'व्यतिक्रम जमानत' अभिप्राप्त करने की सभी अपेक्षाओं का समाधान किया था जो कि यह है कि तारीख 11 जनवरी, 2017 को उसे 10 वर्ष से अनधिक न्यूनतम अवधि के लिए कारावास से दंडनीय अभिकथित अपराध में अन्वेषण लंबित रहने के दौरान 60 दिनों से अधिक अभिरक्षा में रखा गया था और उसके विरुद्ध कोई आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया था तथा वह अपने को छोड़े जाने के लिए जमानत देने के लिए तैयार था, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा उसे युक्तियुक्त निबंधनों और शर्तों पर छोड़ा जाना चाहिए था ।

xxx xxx xxx

49. याची को इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर 'व्यतिक्रम जमानत' मंजूर करने के लिए हकदार ठहराया जाता है । विचारण न्यायाधीश याची को ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो युक्तियुक्त हों, 'व्यतिक्रम जमानत' पर छोड़ दें । तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह बात याची को विषयाधीन आरोप की बाबत तर्कपूर्ण आधारों पर गिरफ्तार या पुन:-गिरफ्तार करने से प्रतिषिद्ध या अन्यथा निवारित नहीं करती है, और गिरफ्तारी या पुन: गिरफ्तारी के उपरांत याची नियमित जमानत प्रदान करने के लिए आवेदन करने का हकदार है, जिस आवेदन पर उसके अपने गुणागुण के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि इस बात से किसी अन्य मामले में याची की गिरफ्तारी पर कोई असर नहीं पड़ेगा ।"

28. न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता ने अपनी सम्मत राय में न्यायमूर्ति लोकुर से निम्नलिखित प्रकार से सहमति व्यक्त की :–

"82. 'व्यतिक्रम जमानत' प्राप्त करने का अधिकार एक अति महत्वपूर्ण अधिकार है । हमारा देश ऐसा है जहां हमारे लाखों देशवासी पूरी तरह से अशिक्षित हैं और अपने अधिकारों की जानकारी नहीं है । संजय दत्त **बनाम** राज्य [(1994) 5 एस. सी. सी. 410 = (1994) एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1433] वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अभियुक्त अवश्य 'व्यतिक्रम जमानत' मंजूर करने के लिए आवेदन करे । जहां तक संहिता की धारा 167 का संबंध है, धारा 167 के स्पष्टीकरण में यह उपबंधित है कि विनिर्दिष्ट अवधि (अर्थात् यथास्थिति, 60 दिन या 90 दिन) समाप्त हो जाने पर भी अभियुक्त व्यक्ति तब तक अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जब तक कि वह जमानत नहीं दे देता है । संहिता की धारा 167 का स्पष्टीकरण 1 निम्नलिखित है :–

'स्पष्टीकरण 1 शंकाएं दूर करने के लिए इसके द्वारा

यह घोषित किया जाता है कि पैरा (क) में विनिर्दिष्ट अवधि समाप्त हो जाने पर भी अभियुक्त व्यक्ति तब तक अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जब तक कि वह जमानत नहीं दे देता है ।'

मेरी राय में, इसका यह अर्थ होगा कि भले ही अवधि का पर्यवसान हो गया हो, अभियुक्त को तब तक विधिक अभिरक्षा में समझा जाएगा जब तक वह जमानत प्रस्तुत नहीं करता है । अभियुक्त को जमानत मंजूर करने के लिए कोई आधार सिद्ध नहीं करना होता है । उसे विस्तृत आवेदन फाइल नहीं करना होता है । उसे आवेदन में यह प्रकथन करना होगा कि चूंकि 60/90 दिनों का पर्यवसान हो गया है और आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया है, इसलिए वह जमानत का हकदार है और जमानत प्रस्तुत करने का इच्छुक है । इस अजेय अधिकार को अभियुक्त द्वारा जमानत प्रस्तुत करने की प्रस्थापना किए जाने के पश्चात् विफल नहीं किया जा सकता है ।

xxx xxx xxx

86. मैं विद्वान् भ्राता न्यायमूर्ति लोकुर द्वारा उनके निर्णय के पैरा 49 से 51 में निकाले गए निष्कर्षों और दिए गए निदेशों से सहमत हूं और सम्मति व्यक्त करता हूं ।"

पूर्वोक्त विनिश्चयों के सिंहावलोकन से यह दर्शित होता है कि बशर्ते कि 90 दिनों की अवधि का पर्यवसान होने पर इससे पूर्व कि आरोप पत्र फाइल किया जाता है, व्यतिक्रम जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन किया गया हो (यहां तक कि यह आवेदन लिखित में करने की आवश्यकता नहीं है), तो व्यतिक्रम जमानत का अधिकार पूर्ण हो जाता है । ऐसा कोई क्षण नहीं है कि प्रश्नगत दंड न्यायालय या तो आरोप पत्र फाइल किए जाने से पूर्व ऐसे आवेदन का निपटारा न करे या ऐसा आरोप पत्र फाइल किए जाने से पूर्व गलत रूप से ऐसे आवेदन का निपटारा करे । बशर्ते कि उल्लिखित अवधि के पर्यवसान होने पर इससे पूर्व कि समय का 180 दिनों की अधिकतम अवधि तक आगे विस्तार किया

जाए, व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन किया गया हो, तो धारा 167(2) के प्रथम परंतुक के अधीन व्यतिक्रम जमानत, अभियुक्त का एक अजेय अधिकार होने के कारण, प्रवर्तित हो जाता है और अवश्य मंजूर की जानी चाहिए ।

29. प्रस्तुत मामले के तथ्यों के आधार पर, उच्च न्यायालय का यह कहना पूर्ण रूप से गलत है कि जब एक बार अभियोजन पक्ष द्वारा तारीख 25 मार्च, 2019 को चालान प्रस्तुत कर दिया गया था और चूंकि अपीलार्थी द्वारा आवेदन द्वारा तारीख 26 मार्च, 2019 को फाइल किया गया था, इसलिए अपीलार्थी व्यतिक्रम जमानत के लिए हकदार नहीं है । सर्वप्रथम बात तो यह है कि उच्च न्यायालय ने तारीखों को पूरी तरह से गलत लिया है । व्यतिक्रम जमानत के लिए जो आवेदन किया गया था, वह तारीख 25 फरवरी, 2019 को या इसके पूर्व किया गया था न कि तारीख 26 मार्च, 2019 को । आरोप पत्र तारीख 26 मार्च, 2019 को फाइल किया गया था न कि तारीख 25 मार्च, 2019 को । इस तथ्य से कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि तारीख 25 फरवरी, 2019 को आवेदन को गलत रूप से खारिज किया गया था इसे पुनरीक्षण में ठीक किया जाना चाहिए था । आवेदन को खारिज करने का एकमात्र आधार यह था कि उप-मंडल न्यायिक मजिस्ट्रेट, अजनाला द्वारा 90 दिनों के समय को तारीख 13 फरवरी, 2019 के अपने आदेश द्वारा पहले ही विस्तारित कर दिया गया था । इस आदेश को विशेष न्यायालय द्वारा तारीख 25 मार्च, 2019 के अपने निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए ठीक ही अपास्त किया गया था कि राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम के साथ पठित विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन केवल विशेष न्यायालय को धारा 43-घ(2)(ख) में प्रथम परंतुक के अधीन 180 दिनों तक समय का विस्तार करने की अधिकारिता है । इस तथ्य का कि अपीलार्थी ने तारीख 8 अप्रैल, 2019 को फिर से व्यतिक्रम जमानत के लिए एक अन्य आवेदन फाइल किया था, यह अर्थ नहीं होगा कि इस आवेदन से उस पूर्ववर्ती आवेदन का प्रभाव समाप्त हो जाएगा जिसका गलत रूप से विनिश्चय किया गया था । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम एक ऐसे कानून के अधीन अभियुक्त की दैहिक

स्वाधीनता पर विचार कर रहे हैं, जिसमें कठोर दंड अधिरोपित किए गए हैं । व्यतिक्रम जमानत का अधिकार, जैसा कि इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है, संहिता की धारा 167(2) के प्रथम परंतुक के अधीन मात्र कानूनी अधिकार नहीं हैं, अपितु भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का भाग है, इसलिए जो कि अभियुक्त व्यक्ति को तब जमानत पर छोड़े जाने के लिए प्रदान किया गया एक मूल अधिकार है जब एक बार धारा 167(2) के प्रथम परंतुक की शर्तें पूर्ण हो जाती हैं । ऐसी स्थिति में, हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हैं । अपीलार्थी अब संहिता की धारा 167(2), विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम की धारा 43-घ द्वारा यथा संशोधित, के अधीन 'व्यतिक्रम जमानत' पर छोड़े जाने का हकदार होगा । तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह बात याची को तर्कपूर्ण आधारों पर गिरफ्तार या पुन: गिरफ्तार करने से प्रतिषिद्ध या निवारित नहीं करती है और याची गिरफ्तार या पुन: गिरफ्तार होने पर नियमित जमानत के लिए आवेदन फाइल करने का हकदार है और उस आवेदन पर उसके गुणागुण के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि इस निर्णय का किसी अन्य मामले में याची की गिरफ्तारी पर कोई असर नहीं पड़ेगा ।

30. तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.